श्रीपाल-चरित्र

श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती मन्दिर
कोलकाता-७०० ००७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीपाल-चरित्र

पंडित काशीनाथ जैन

संपादन
श्रीमती लता बोथरा
जैन भवन पी-२५, कलाकार स्ट्रीट
कोलकाता – ७०० ००७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशन - श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती मन्दिर
१३९, काटन स्ट्रीट,
कोलकाता - ७०० ००७

चतुर्थ संस्करण - सन् २००३

मूल्य - पचास रुपये

मुद्रक - अरुनिमा प्रिंटिंग वर्क्स
८१, शिमला स्ट्रीट
कोलकाता - ७०० ००६

Composed by:
Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती मंदिर

पूर्वांचल की सांस्कृतिक राजधानी कलकत्ता भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के समय राजधानी रह चुका है। पूर्वी भारत के अनिश्राकृत जिनालयों में यहाँ पर स्थित श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती मंदिर का महत्वपूर्ण स्थान है। सर्वप्रथम धीरज सिंहजी श्रीमाल ने अपने घर में देरासर की स्थापना की। बाद में उन्होंने अपना मकान श्री संघ को भेंट कर दिया जिसे श्री संघ ने सं० १८६१ में विशाल द्वितल शांतिनाथ जिनालय का रूप दिया। इस मंदिर में दूसरे तल्ले में भगवान ऋषभदेव तथा महावीर स्वामी आदि तीर्थंकरों की चौमुख प्रतिमा विराजमान है। भगवान पार्श्वनाथ स्वामी, मुनिसुव्रत स्वामी, पद्मप्रभ स्वामी, नवपदजी, सीमंधर स्वामी, शांतिनाथ स्वामी व दादासाहब की वेदियाँ बनी हुई हैं। अष्टापदजी का भाव बड़ा ही आकर्षक है। गौतम स्वामी, सुधर्मास्वामी, अधिष्ठाता आदि अनेकशः विराजमान हैं। पद्मावती देवी, चक्रेश्वरी देवी की युगम मूर्तियाँ स्थापित हैं। यह श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती मन्दिर कहलाता है और ट्रस्ट बोर्ड के अधीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी सारी व्यवस्था चल रही है। वर्तमान में ट्रस्ट बोर्ड के निम्नलिखित सदस्य हैं :-

श्री बंशीलाल सुराना	-	अध्यक्ष
श्री कान्तिलाल मुकीम	-	मंत्री
श्री चम्पालाल कोठारी	-	ट्रस्टी
श्री कमल सिंह रामपुरिया	-	ट्रस्टी
श्री शान्ति चन्द सुखानी	-	ट्रस्टी
श्री विनोद चन्द बोथरा	-	ट्रस्टी
श्री शशीकान्त नौलखा	-	ट्रस्टी

यहाँ से प्रतिवर्ष कार्तिक पूर्णिमा के दिन भगवान् धर्मनाथ की विश्वविश्रुत सवारी निकलकर दादाबाड़ी जाती है जहाँ की व्यवस्था इसी ट्रस्ट द्वारा की जाती है। बाहर से आये हुए यात्री व स्थानीय जनता लाखों की संख्या में यहाँ दर्शनार्थ आते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

"नामाकृतिद्रव्य भावै, पुनतस्त्रिजगज्जनम्।
क्षेत्रे काले च सर्व्वस्मिन्नर्हत : समुपास्महे।।"

समस्त लोकों और सब कालों में अपने नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चार निपेक्षों द्वारा संसार के प्राणियों को पवित्र करने वाले तीर्थंकरों की आराधना हम करते हैं।

विषय के भोगने में रोगों का, कुल में दोषों का, मौन रहने में दीनता का, बल में शत्रुओं का, सौंदर्य में बुढ़ापे का, गुणों में दुष्टों का और शरीर में मृत्यु का भय हमेंशा विद्यमान रहता है। अगर संसार में भय नहीं है तो केवल तीर्थंकरों उपासना में जहाँ केवल सुख-आनन्द और परम शान्ति मिलती है। जन्म, मरण, रोग, शोक शत्रुओं के भय से मुक्ति का एक मात्र उपाय तीर्थंकरों द्वारा प्रदर्शित मार्ग है जिस पर चल कर ही मानव अपने संसारिक दुःखों से छुटकारा पा सकता है। यह संसार जन्म और मृत्यु का अनन्त चक्र है। मनुष्य अच्छे कर्म करके अच्छा जन्म पा सकता है और अशुभ कर्मों से केर्मों का बन्ध कर संसार परिभ्रमण करता है। शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्म भावी सुख और दुःख का कारण बनते हैं अर्थात् इनके फलों का परिणाम निश्चय ही इसी जन्म में अथवा अगले जन्म जन्मान्तर तक भोगना पड़ता है। इसी कर्म सिद्धान्त के महत्व को दर्शाने वाला "श्रीपाल चरित्र कथानक" बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत स्वामी के शासन काल का है जिसे तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी के प्रथम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गणधर गौतम स्वामी ने मगध सम्राट श्रेणिक बिम्बसार को सुनाते हुए श्री सिद्धचक्र की आराधना का महत्व बताया था। किस प्रकार श्रीपाल कुमार पर पूर्व जन्म में किये अशुभ बन्धनों के परिणाम स्वरूप इस जन्म में अनेक घोर प्राणान्तक कष्ट आये लेकिन श्री सिद्ध चक्र नवपद की आराधना द्वारा जो पुण्य अर्जित किया उसी के फलस्वरूप उन्हें इन कष्टों से छुटकारा मिला और अपार सुख-समृद्धि, और वैभव की प्राप्ति हुई। पूर्व कृत अशुभ कर्मों के बन्धन के कारण अपरिचित कुष्ट रोगी के साथ परिणय सूत्र में बाँध दी जाने वाली राजकुमारी मयणा सुन्दरी ने गुरु कृपा से श्री सिद्ध चक्र नवपद आराधना द्वारा अपने पर आये सभी उपसर्गों को दूर कर अटूट ऐश्वर्य की प्राप्ति के साथ-साथ आत्म-शुद्धि कर सम्यक्त्व प्राप्त किया। श्री सिद्धचक्र की आराधना के महत्व को समझने के लिये श्रीपाल चरित्र अत्यन्त उपयोगी एवं प्रेरणा देने वाला कथानक है। श्री जैन श्वेताम्बर मन्दिर ट्रस्ट ने इस उपयोगी ग्रन्थ को पुनः प्रकाशित कर श्रुत-ज्ञान के प्रचार में महत्व पूर्ण योगदान दिया है। श्री विनोद चन्दजी बोथरा की प्रेरणा व सहयोग इस ग्रन्थ के प्रकाशन के कार्य को सम्पन्न करने में सहायक बना। इस चरित्र को पढ़कर यदि जिन धर्म और जिन आदर्शों के प्रति किंचित मात्र भी सम्मान या श्रद्धा साधारण मानस में उपजती है तो मैं समझती हूँ कि जिन शासन और जिनवाणी के महत्व को प्रतिबिम्बित करता हुआ यह प्रकाशन और प्रकाशित तथ्य दोनों अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकेंगे।

लता बोथरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीपाल-चरित्र

पहला परिच्छेद

पुत्र-वियोग

अंगदेश में चम्पापुरी नामक एक नगरी थी। उसमें सिंहरथ नामक राजा राज करते थे। उनकी रानी का नाम कमलप्रभा था। कमलप्रभा कोंकण देश के राजा की बहिन थी। राजा सिंहरथ की अवस्था बहुत बड़ी हो जाने पर भी वह सन्तान सुख से बंचित थे। इसके लिये वह सदैव चिन्तित रहते थे। मन में सोचा करते, कि मेरे बाद यह सब राज-पाट कौन सम्हालेगा? सन्तान-प्राप्ति के लिये वह अनेक प्रकार की मनौती मानते और दान-पुण्य करते। अन्त में जिस प्रकार विद्या विवेक को जन्म देती है, उसी प्रकार रानी कमलप्रभा ने तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। राजा को इसके लिये बधाई दी गई। उनके आनन्द का पारा-वार न रहा। समूचे नगर में उत्सव मनाया जाने लगा। सभी लोग हर्ष तरंगो से आन्दोलित हो उठे। घर-घर बन्दनवार बाँधे गये। सारा नगर ध्वजा पताकाओं से सजाया गया। अग्रगण्य निवासी राजा की सेवा में उपस्थित हो, उन्हें बधाई देने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा ने भी इस अवसर पर दरिद्रों को मुक्त हस्त से दान दिया। बन्दीगण कारागार से मुक्त कर दिये गये। शत्रुओं तक को सन्तुष्ट करने की चेष्टा की गयी। शहर में चारों ओर आनन्द की हिलोरें उठ रही थीं। कहीं मंगल-गान हो रहे थे, तो कहीं नाटक खेले जा रहे थे। कहीं बाजे बज रहे थे, तो कहीं दूसरे ही प्रकार से आनन्द व्यक्त किया जा रहा था। तात्पर्य यह कि समूचे शहर में इस महोत्सव की धूम मची हुई थी। बाहरवें दिन राजा ने अपने इष्ट मित्र और बन्धु-बान्धुवों को निमंत्रित किया। भोजनादि से निवृत्त होने के बाद वे सभी वस्त्राभूषण और नाना प्रकार की बहुमूल्य चीजें देकर सम्मानित किये गये। राजा ने समस्त जनों के सामने सहर्ष घोषित किया, कि इस कुमार द्वारा मेरी राज-ऋद्धि और प्रजा का पालन होगा, अतः इसका नाम मैं **श्रीपाल** रखता हूँ।

परन्तु राजा के भाग्य में अधिक दिनों तक सन्तान सुख भोगना नहीं बदा था। श्रीपाल की अवस्था अभी पूरे पाँच वर्ष की भी न हुई थी, कि एक दिन शूल रोग से अचानक राजा का प्राणान्त हो गया। इस घटना से चारों ओर हा-हा कार मच गया । रानी कमलप्रभा अथाह शोक-सागर में विलीन हो गयी। उसका रूदन बड़ा ही करुणापूर्ण था। जो उसे सुनता उसी का हृदय द्रवित हो उठता उसके दुःख का कोई पार न था। उसकी व्याकुलता अवर्णनीय थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रानी की व्याकुलता का समाचार सुन मतिसागर नामक मन्त्री उनके पास गया। उसने अनेक प्रकार से रानी को सान्त्वना देकर समझाया कि अब इस कल्पांत से कोई लाभ नहीं। जो होना था सो गया। अपने हृदय को दृढ़ बनाइये और राज-काज की बागडोर अपने हाथ में लीजिये। राज.कुमार की अवस्था अभी बहुत छोटी है। यदि आप इस समय अपने को न सम्हालियेगा तो राज्य हाथ में रहना कठिन हो जायेगा।

भविष्य की चिन्ता, भूत और वर्तमान को भुला देती है। मन्त्री की बातें सुन रानी को होश हुआ। उसकी बुद्धि बहुत ही तीक्ष्ण थी। राज्य के शत्रु और मित्रों की बातें उससे छिपी न थी। उसने अपने आन्तरिक दुःख को हृदय में रख, मन्त्री से ही कहा,— **"मुझे आप पर पूर्ण विश्वास है। आपके सिवा मुझे अब और किसी का सहारा भी नहीं है। आप राज कुमार को गद्दी पर बैठा कर राज-काज चलाइये और मेरे विश्वास को सफल बनाइये।"**

मन्त्री वास्तव में बड़ा स्वामी-भक्त था। उसने पुनः रानी को सान्त्वना दे, राजा की अन्तिम क्रिया का प्रबन्ध किया। इससे निवृत्त होने के बाद उसने प्रजा की अनुमति ग्रहण कर कुमार श्रीपाल को सिंहासनारूढ़ कराया। राज्य भर में उसके नाम की दोहाई दी गयी। यह सब प्रथायें पूर्ण होने पर वह पूर्ववत् राज्य का समस्त कार्य संचालन करने लगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मतिसागर का यह कार्य अनेक स्वार्थी और द्वेषी लोगों को पसन्द न आया। ऐसे लोगों में श्रीपाल का एक चचेरा काका प्रधान था। उसका नाम अजीतसेन था। उसने सोचा कि यदि इस समय मतिसागर और श्रीपाल को किसी तरह मार डाला जाय, तो सिंहरथ का समस्त राज्य और समस्त सम्पत्ति हाथ आ सकती है। धीरे-धीरे वह इसके लिये षड्यन्त्र रचने लगा। राज्य के अनेक उच्च अधिकारियों और राजपरिवार के अनेक व्यक्तियों को उसने नाना प्रकार के प्रलोभन देकर हाथ में कर लिया। भीतर ही भीतर सब तैयारियां पूरी हो गयी। मतिसागर और श्रीपाल पर अब विपत्ति का पहाड़ टूटने ही वाला था, कि मतिसागर के किसी शुभ-चिन्तक ने उसको चुपचाप इस बात की सूचना दे दी। मतिसागर सावधान हो गया। उसने तुरन्त रानी को भी इस बात की सूचना दे दी।

रानी यह भीषण समाचार सुनते ही विचलित हो उठी। राजकुमार पर आनेवाली विपत्ति की कल्पना से ही उसका नारी हृदय कंपित हो उठा। किन्तु अब कुछ सोचने या विलम्ब करने का समय न था। मतिसागर ने उसे सलाह देते हुये कहा, कि अब बाजी पलट गयी है। कुमार के प्राण बचाने का केवल एक यही उपाय दिखायी देता है, कि आप किसी तरह रात ही को कुमार के साथ यह स्थान छोड़ दे। किसी को कानों-कान इस बात की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खबर न होनी चाहिये। यदि राजकुमार बच जायँगे, तो फिर किसी दिन यह राज्य हस्तगत कर सकेंगे। इस समय इसके सिवा और कोई उपाय मुझे दृष्टिगोचर नहीं होता।

मन्त्री की यह सलाह रानी को मजबूरन माननी पड़ी। पांच वर्ष के पुत्र को गोदी में ले, वह उसी रात को महल से चल पड़ी। उसकी आँखों से अश्रुधारा बह रही थी, हृदय टूक-टूक हो रहा था, किन्तु पुत्र के प्राणों की ममता उसे उस राज-मन्दिर और उस नगरी को छोड़ने के लिये बाध्य कर रही थी जहाँ उसने वर्षों तक राजमहिषी के स्थान पर रहकर, विपुल सुख-सम्पत्ति और ऐश्वर्य का उपभोग किया था। न उसने कभी धूल देखी थी, न सेर भर बोझ उठाया था, न कभी पैदल चलने का ही उसे काम पड़ा था। आज दैव दुर्विपाक से उसे इन सभी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। रात का समय था। चारों ओर घोर अन्धकार था। उसे पद-पद पर ठोकरें लगती थीं। सुकोमल चरणों में काँटे और कंकड़ लगने से रुधिर की धारा बह रहीं थी, बारम्बार हिंसक प्राणियों के भीषण नाद उसका कलेजा कँपा देते थे। झाड़ियों में उलझ-उलझ कर उसके वस्त्र चीथड़ों में परिणत हो गये थे। फिर भी वह अपने जीवन सर्वस्व राजकुमार को लिये हुए उत्तरोत्तर आगे बढ़ती जाती थी। सत्य और सतीत्व यह दोनों उसके प्रबल साथी थे। राजकुमार की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी जीवन-डोरी लम्बी थी; इस लिये किसी हिंसक प्राणी ने उस पर आक्रमण नहीं किया। जो रत्न के हिंडोले पर झूलती थी, पुष्प शैय्यापर सोती थी, कभी कठोर भूमि पर पद भी न रखती थी, वह आज वन पशुओं से पूरित भयंकर जंगल में, अंधेरी रात्रि के समय अकेली भटक रही थी! कालकी कुटिलता का इससे भयंकर प्रमाण और क्या हो सकता है?

समय अपना काम कर रहा था। धीरे-धीरे रात्रि व्यतीत हुई। सूर्योदय होने पर रानी को रास्ता सुझाई दिया और वह जंगल को छोड़कर एक वास्तविक पथ पर आ लगी। प्रतिपल उसे यह भय लगा हुआ था कि कहीं अजीतसेन के सैनिक उसे पकड़ न ले जायें। किन्तु इस भय से मुक्त होने का कोई उपाय उसे सूझ न पड़ता था। इसी समय राजकुमार को भूख लगी। उस बेचारे को क्या खबर थी, कि दुर्दैव ने आज उसे राज-सिंहासन से उठाकर रास्ते का एक भिखारी बना दिया है। उसने सदा की भाँति माता से मिश्री मिले दूध की याचना की। माता के नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। उसने किसी तरह कुमार को समझाबुझा कर शान्त किया और द्रुतवेग से आगे की राह ली।

कुछ दूर आगे चलने पर रानी को सात सौ कोढ़ियों का एक दल मिला। इस दल के लोग नाना प्रकार की व्याधियों से ग्रसित हो रहे थे। अधिकांश गलित कुष्ट से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जंगलमें अंधेरी रात्रिके समय अकेली भटक रही थीं!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पीड़ित थे। फिर भी वे सभी बहुत ही प्रसन्न मालुम होते थे। रानी को पुत्र के साथ कष्ट पूर्वक रास्ता काटते देख, उन्होंने रानी से पूछा कि – **"तुम किसी भले घर की स्त्री मालूम होती हो, फिर भी तुम्हें इस तरह अकेले और पैदल क्यों चलना पड़ रहा है?"**

किसी दुःख या सुख में समानता होने पर स्वाभाविक रूप से ही एक दूसरे के प्रति सहानुभूति का भाव उत्पन्न हो जाता है। रानी ने सोचा कि इन दुःखी मनुष्यों के सम्मुख अपना दुखड़ा रोने से किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती, इसलिये उसने सब सच्ची बातें उन लोगों को कह सुनायी। रानी की करुणा जनक बातें सुनते ही कोढ़ियों के हृदय द्रवित हो उठे। उन्होंने कहा कि- **"तुम्हारा इस तरह चलना भय से खाली नहीं है। संभव है कि अजीत सेन के सैनिक तुम्हें खोजते हुए यहाँ तक आ पहुँचे और तुम दोनों को पकड़ ले जायँ। इसलिये यही उत्तम होगा, यदि तुम हमारे दल में मिल जाओ। फिर किसी तरह का भय न रहेगा। जब तक हम जीते हैं, किसकी मजाल है कि तुम्हारी ओर आँख उठा कर भी कोई देख सके?"**

कोढ़ियों की इन बातों से रानी को बहुत हिम्मत आई। उनके दल में सम्मिलित होते उसे आन्तरिक संकोच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो रहा था; किन्तु राजकुमार को बचाने के लिये इससे बढ़कर दूसरा कोई उपाय न था। इसीलिये उसने कोढ़ियों की बात स्वीकार कर ली। कोढ़ियों ने उसे सवारी के लिये एक टट्टू दे दिया। रानी ने राज़कुमार को गोद में ले, चारों ओर से अपना शरीर ढँक लिया, और उसी पर बैठ कोढ़ियों के साथ वह अपना रास्ता तय करने लगी।

यह दल कुछ ही दूर आगे बढ़ा था कि पीछे से अजीतसेन के सवार आते हुए दिखाई दिये। कोढ़ियों के नजदीक आने पर उन्होंने पूछा—क्या तुमने किसी स्त्री को एक बच्चे के साथ इस रास्ते से जाते देखा है?

कोढ़ियों ने साफ इनकार किया; परन्तु सवारों को सन्देह हुआ, इसलिये वे कोढ़ियों से नाना प्रकार के प्रश्न करने लगे। कोढ़ियों ने उत्तर दिया कि– हमने किसी स्त्री को न तो जाते ही देखा है, न वह हमारे ही साथ है, फिर भी यदि तुम्हें विश्वास न हो तो हमारे दल की भली भाँति तलाशी ले सकते हो, किन्तु इस बात का ध्यान रहे कि हमें छूने से तुम्हें भी यही रोग हो जाने की सम्भावना है।

कोढ़ियों की बातें सुन सवारों ने अधिक जाँच-पड़ताल करना अनावश्यक समझा और वहीं से सब वापस लौट गये।

अब राजकुमार व रानी को किसी प्रकार का भय न रहा; किन्तु दुर्भाग्यवश कोढ़ियों के साथ रहने और उनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाथ का अन्न जल ग्रहण करने से कुछ ही दिनों में कुमार को भी कुष्ट व्याधि हो गया। रानी को यह देख कर बड़ी चिन्ता हुआ। उसने स्थिर किया कि कुमार को इस व्याधि से छुड़ाना ही होगा। यह विचार कर वह राजकुमार को कोढ़ियों के हवाले कर, औषधि की खोज में एक ओर चल पड़ी। कोढ़ियों के दल ने राजकुमार के साथ मालव-देशकी ओर प्रस्थान किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरा परिच्छेद

राज-कन्याओं की परीक्षा

इस भारतवर्ष के मध्य खण्ड में मालव नामक एक विख्यात और मनोहर प्रदेश है। किसी समय उज्जयिनी—उज्जैन नामक नगरी उसकी राजधानी थी। वहाँ उन दिनों प्रजापाल नामक राजा राज करता था। उसके दो रानियाँ थी। एक का नाम था सौभाग्य सुन्दरी और दूसरी का नाम था रूप सुन्दरी। सौभाग्य सुन्दरी मिथ्यात्वी और रूपसुन्दरी समकिती थी। कुछ दिनों के बाद दोनों ने एक-एक पुत्री को जन्म दिया। सौभाग्य सुन्दरी की पुत्री का नाम सुरसुन्दरी और रूप सुन्दरी की पुत्री का नाम मैनासुन्दरी रक्खा गया।

जब इन कन्याओं की अवस्था विद्याभ्यास करने योग्य हुई, तब सौभाग्यसुन्दरी ने अपनी पुत्री के शिक्षण का भार एक वेदशास्त्र-पारंगत ब्राह्मण को सौंप दिया। सुरसुन्दरी ने उस ब्राह्मण पण्डित से चौंसठ कलायें, शब्दशास्त्र, निघंटु और चिकित्सा-शास्त्र आदि की शिक्षा प्राप्त की।

मैना की माताने अपनी पुत्री को जिनमत के ज्ञाता एक पण्डित से शिक्षा दिलाई। उसने अच्छे-अच्छे सिद्धान्तों का अध्ययन किया और काव्यकला, संगीत, गायन, वादन, ज्योतिष, वैद्यक तथा विविध कलाओं का ज्ञान सम्पादन किया। जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धान्तों का रहस्य जानने पर उसे स्याद्वाद् मार्ग पसन्द पड़ा। उसने सातों नय, नवतत्त्व, षट्द्रव्य और उनके गुण-पर्यायों का अभ्यास किया। कर्म-ग्रन्थ, संघयण, क्षेत्रसमासादि प्रकरण अर्थ सहित कंठाग्र किये और प्रवचनसारोद्धारादि ग्रन्थ पढ़कर जैन धर्मका यथेष्ट ज्ञान प्राप्त किया।

जब दोनों कन्यायें पढ़-लिखकर प्रवीण हुई, तब एक दिन राजा ने विचार किया कि इनकी परीक्षा लेनी चाहिये। निदान, उसने उन दोनों बालिकाओं को वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो सभा-भवन में उपस्थित होने की आज्ञा दी। आज्ञा मिलते ही दोनों राजकुमारियाँ अपने अपने अध्यापकों के साथ राज सभा में पहुँच गई।

राजा ने अपनी दोनों पुत्रियों से शास्त्र के अनेक गूढ़ प्रश्न पूछे। दोनों ने उन प्रश्नों के उत्तर बहुत ही शीघ्रता और सच्चाई के साथ दिये। राजा को इससे परम सन्तोष हुआ। अध्यापकों और सभाजनों को भी सन्तोष और आनन्द हुआ। कुमारियों की बुद्धिमत्ता और कला-कुशलता देखकर सबके हृदय आश्चर्य से पूरित हो गये। पुत्रियों की विनम्र भाषा और ज्ञान युक्त बातें राजा को अमृत से भी बढ़कर मधुर प्रतीत हुई।

इसके बाद राजा ने दोनों कन्याओं से कई समस्यायें पूछीं। कन्याओं ने तत्काल उनके उत्तर दिये। इसके बाद उसने पूछा-बेटियो! भला यह तो बतलाओ कि पुण्य से किस वस्तु की प्राप्ति होती है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरसुन्दरी ने उत्तर दिया—पुण्य से धन, यौवन, सुन्दरता, चातुर्य और प्रियतम की प्राप्ति होती है। मैनासुन्दरी ने कहा--पुण्य से न्यायशील बुद्धि, निरोग-शरीर और सद्गुरु की प्राप्ति होती है।

दोनों के उत्तर युक्ति-संगत और सत्य थे। राजा को यह उत्तर सुनकर बहुत ही प्रसन्नता प्राप्त हुई। उसने अभिमान-पूर्वक कहा— पुत्रियों! मैं तुमसे बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ। इस समय तुम्हें जो इच्छा हो, माँग सकती हो। यह बात शायद तुमसे छिपी न होगी कि मैं निर्धन को धनवान और रंक को राजा कर सकता हूँ। सब लोग मेरी ही कृपा से सुख भोग रहे हैं। मैं जिससे तुष्ट हो जाऊँ उसे इस संसार के समस्त पदार्थ मिल सकते हैं। और जिससे मैं रुष्ट हो जाऊँ उसे कहीं बैठने को भी ठिकाना नहीं मिल सकता।

पिताकी यह बात सुनकर सुरसुन्दरी ने कहा—पिताजी! आपने जो कहा वह बिल्कुल ठीक है। इस संसार में जीवन-दाता दो ही हैं। एक तो मेघ और दूसरा राजा। यदि यह दोनों न हों, दुनिया देखते ही देखते उलट पुलट हो जाय!

सुरसुन्दरी की यह बातें सुन हाँ में हाँ मिलाने वाले सभाजनों ने भी उसकी बातों का समर्थन करते हुए कहा कि--सुरसुन्दरी की बातें बहुत ही ठीक हैं। ऐसी चतुर कन्या हमने आज तक और कहीं नहीं देखी!

पुत्री की यह प्रशंसा सुन राजा का हृदय आनन्द से फूल उठा। उसने कहा—सुरसुन्दरी! तेरी ज्ञान-गरिमा देखकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में आज मारे हर्ष के फूला नहीं समाता। अब मैं शीघ्र ही किसी योग्य वर से तेरा विवाह कर तेरे सुख-सौभाग्य की वृद्धि करूँगा।

राजा ने यह बात व्यर्थ ही न कहीं थी। उसे पहले से ही यह बात मालूम हो चुकी थी, कि सुरसुन्दरी मन-ही-मन अरिदमन पर अनुरक्त हो रही थी। अरिदमन कुरु जंगल देशका तत्कालीन राजा था। शंखपुरी उसकी राजधानी थी। इन दिनों वह प्रजापाल का अतिथि था और आज भी वह राज-सभा में उपस्थित था। राजा ने यह सब जानकर ही उपरोक्त बात कही थी। उसने उसी समय उन दोनों के विवाह की बात पक्की कर दी। सुरसुन्दरी अपने अभीष्ट को पाकर अनिर्वचनीय सुख में विभोर हो गई।

जिस समय सुरसुन्दरी राज-सभा में इस प्रकार सम्मानित हो रही थी, उस समय मैनासुन्दरी आश्चर्यचकित हो देख रही थी। उसकी यह अवस्था देख राजा ने कहा—क्यों मैना! सुरसुन्दरी ने जो बात कही और सभा-जनों द्वारा जो बात अनुमोदित हुई, क्या वह तुझे पसन्द न आयी? तुझे न रुचि? यदि यही बात है और तू अपने को सबसे ज्यादा चतुर समझती है, तो अपने मन की बात क्यों नहीं कहती?

विदुषी मैनासुन्दरी ने कहा—पिताजी! मैं क्या कहूँ? जहाँ लोगों के मन विषय-कषाय के कारण मोहजाल में उलझ रहे हों, जहाँ राजा अविवेकी हो-कहता कुछ और करता कुछ हो, और जहाँ जी हजूरों का दरबार लगा हो, वहाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ न कहना ही अच्छा है। फिर भी मुझसे कहे बिना नहीं रहा जाता, इसलिये दो चार बातें कहती हूँ। पिताजी! जिसका हृदय विवेक रूपी दीपक के प्रकाश से प्रकाशित रहता है, वह कभी अज्ञान के फेर में नहीं पड़ता। आप अपने हृदय में विवेक को स्थान दीजिये, कुछ सोचिये समझिये, मिथ्याभिमान न कीजिये; क्योंकि यह सुख-सम्पदा सागर-तरंग की भाँति अस्थिर है। न कहीं यह स्थिर होकर रही है, न रहेगी। साथ ही एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। इस संसार में प्राणीमात्र जो सुख-दुःख भोग करते हैं, उसमें अणुमात्र भी कमी या अधिक करना मनुष्य की शक्ति के परे है। आप कहते हैं, कि मैं निर्धन को धनवान और रंक को राजा कर सकता हूँ ; परन्तु यह ठीक नहीं। यदि किसी के दुष्कर्मों का उदय हुआ हो तो आप हजार चेष्टायें करने पर भी उसे सुखी नहीं कर सकते और यदि किसी के भाग्य में सुख बदा हो, तो आप उसे उस सुख से वंचित भी नहीं रख सकते। मेरा आपसे यही निवेदन है कि आप मिथ्याभिमान छोड़ दें, इस बुरी धारणा को भूलकर भी हृदय में स्थान न दें। इसी में आपका कल्याण है। मुझे यह सब बातें कहनी उचित न थी, किन्तु आपके अनुरोध करने पर मैं भी चुप न रह सकी। मुझे विश्वास है, कि इससे आप बुरा न मानेंगे।

मैनासुन्दरी की यह बातें सुन राजा का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। उसकी आँखों से मानों चिनगारियाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप उसे उस सुखसे वञ्चित भी नहीं रख सकते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

झरने लगी। उसने कहाः— धन्य है पुत्री! तूने अच्छी विद्या प्राप्त की! तुझे पढ़ाने लिखाने का यही फल हुआ कि तूने आज मेरी बात काटी, भरी सभा में मेरा अपमान किया; किन्तु ध्यान रहे, इससे मेरा कुछ न बिगड़ेगा। इन बातों से तूने अपना ही भविष्य बिगाड़ डाला है। मैंने तुझे पाल-पोस कर बड़ी किया, अच्छे से अच्छा भोजन खिलाया, बढ़िया से बढ़िया कपड़े पहनाये, सेवा के लिये दास-दासियाँ दीं और सब तरह से तुझे सुखी रक्खा। क्या तू यह कहना चाहती है, कि यह सब मैंने नहीं किया, तेरे भाग्य-बल से ही हो गया?

मैनासुन्दरी ने कहा–पिताजी! आप बुरा न मानिये, क्रोध को किनारे रख, तत्व-बुद्धि से विचार कीजिये और सोचिये कि मैं जो कहती हूँ, वह ठीक है या नहीं। मैं तो फिर भी कहती हूँ कि, कर्म-संयोग से ही आपके वंश में मेरा जन्म हुआ है। आपकी ओर से मुझे जो वस्त्रालंकार, खान-पान, सुख-समृद्धि या प्रेम उपलब्ध होता है, वह मेरे शुभ कर्मों के उदय का ही फल है, और कुछ नहीं। यदि आप शान्त चित्त से विचार करेंगे, तो मेरी इन बातों का तथ्य तत्काल समझ में आ जायेगा।

राजा ने रुष्ट होकर कहा—बस मैना! मैं अब तेरी बातें नहीं सुनना चाहता। यदि तुझे प्रारब्ध पर ही इतना अधिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्वास है, तो अब तेरा ब्याह मैं ऐसे वर से करूँगा, जिसे प्रारब्ध ही यहाँ ले आया होगा। बस, फिर तू अपने प्रारब्ध बल से कितना सुख भोगती है, सो मैं देख लूँगा।

राजा और मैनासुन्दरी की बात-चीत का यह दुष्परिणाम देखकर लोगों को बड़ा खेद हुआ। अकारण ही राज-सभा में राजा का अपमान करने के कारण अनेक दरबारी मैना की निन्दा करने लगे। कितनों ही ने उसकी विद्या को धिक्कारा और कितनों ही ने उसके अध्यापक की निन्दा की। नगर-निवासी भी मैना की बुद्धि पर हँस-हँस कर कहने लगे कि बलिहारी है, इस बुद्धिकी, कि इसने राजा की प्रसन्नता को अप्रसन्नता में परिणत कर, अपने लिये विपत्ति बटोर ली। मिथ्यात्वियों को भी जैन मत की खिल्ली उड़ाने का अवसर मिल गया। वे कहने लगे—जैनों की सभी बातें उलटी होती हैं। व्यवहार-बुद्धि तो उन्हें होती ही नहीं। प्रत्येक बात में उद्दण्डता ही दिखाई देती है। विवेक और नम्रता किसे कहते हैं, यह शायद वे जानते ही नहीं।

मैनासुन्दरी की बातों पर चारों ओर इसी तरह की आलोचनायें हो रही थीं; परन्तु उसे रंचमात्र भी इसका खेद न था। उसे अपने प्रारब्ध पर अटल विश्वास था। वह जिस प्रसन्नता के साथ राज-सभा में आयी थी, उसी प्रसन्नता के साथ वहाँ से विदा हुई। मानों कुछ हुआ ही नहीं। परन्तु राजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रजापाल बैठा-बैठा क्रोध से काँप रहा था। उसकी अवस्था बहुत ही विचित्र हो रही थी। मालूम होता था कि वह इस समय न जाने क्या कर डालेगा? उसके चतुर मन्त्री ने उसका ध्यान इस घटना की ओर से हटाकर उसे शान्त करने के विचार से कहा—महाराज! बगीचे में जाने का समय हो गया है। आज्ञा हो तो सवारी की तैयारी की जाय।

यह बात सुनते ही राजा को अपने कर्तव्य का स्मरण हुआ। मन्त्री को अनुमति सूचक उत्तर दे उसने उसी क्षण सभा विसर्जन कर दी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीसरा परिच्छेद

सिद्धचक्र की प्राप्ति

बड़ी सज-धज के साथ प्रजापाल की सवारी बगीचे की ओर चली। कई सवार आगे और कई सवार पीछे चलते थे। साथ में ध्वजा पताका आदि राज-चिन्ह भी थे। राजा एक बहुमूल्य घोड़े पर सवार थे। जिस समय यह सवारी शहर के बाहर पहुंची, उस समय राजा ने देखा कि सामने बहुत सी धूल उड़ रही है। मन्त्री से इसका कारण पूछने पर उसने बतलाया कि—यह सात सौ कौढ़ियों का एक दल है और इस समय हमारे शहर की ओर आ रहा है। इन कोढ़ियों ने एक कोढ़ी को अपना राजा बनाया है और उसी के साथ चारों ओर भ्रमण किया करते हैं। जहाँ जाते हैं, वहीं के राजा और धनी-मानो व्यक्तियों से सहायता माँगते हैं। इस प्रकार इन्हें जो कुछ मिल जाता है, उसी से अपनी जीविका चलाते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से हम लोगों को इनसे दूर ही रहना वाञ्छनीय है।

मन्त्री की यह बात सुन राजा ने वह रास्ता छोड़कर दूसरा रास्ता लिया। कोढ़ियों ने यह देखकर तुरन्त अपना दूत राजा के पास भेजा। उसने राजा को प्रणाम कर सविनय निवेदन किया—राजन्! हम लोग बड़ी आशा के साथ आपके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पास याचना करने आ रहे थे; परन्तु हमें यह देख कर बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि आपने हमें देखते ही अपना रास्ता बदल दिया। आप जैसे यशस्वी दानवीरों को इस प्रकार दान से मुँह न मोड़ना चाहिये।

राजा ने कहा—दान से मुँह मोड़ने के उद्देश्य से हमने रास्ता नहीं बदला। खैर, कहो तुम क्या चाहते हो? भरसक तुम्हारी इच्छा पूर्ण की जायगी।

दूत ने कहा—राजन्! हमने अपने राजा के लिये समस्त चीजें जुटा ली हैं, परन्तु अबतक रानी का कोई प्रबन्ध नहीं कर सके। यदि कोई सद्गुणी और सुशीला कन्या के लिये आप प्रबन्ध कर सकें, तो हम लोग आपके चिरकृतज्ञ रहेंगे।

दूत की यह बात सुन राजा को राज-सभा की घटना स्मरण हो आयी। उसने मन में सोचा कि यदि मैना सुन्दरी का ब्याह कोढ़ियों के राजा से कर दिया जाय तो मेरी कीर्ति भी बढ़ सकती है और मैना को भी कर्म-फल भोगने का अवसर मिल सकता है। यह सोच कर उसने कहा—तथास्तु! तुम लोग अपने राजा को लेकर राजसभा में उपस्थित हो मैं अपनी राज-कन्या से उसका विवाह कर दूँगा।

राजा की यह बात सुन कोढ़ियों का दूत स्तम्भित हो गया। उसे किसी प्रकार विश्वास ही न होता था कि प्रजापाल अपनी राज-कन्या का एक कोढ़ी के साथ ब्याह कर देगा। उसे इस प्रकार असमंजस में पड़ा देख राजा ने डपट कर कहा—मूर्ख! सोच क्या रहा है? विश्वास रख, कि मेरी बात अब फिर नहीं बदल सकती।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह सुन, दूत तुरन्त वहाँ से चलता बना। उसने अपने दल को यह हर्ष-समाचार सुनाया। सुनते ही मारे खुशी के सारा दल उछल पढ़ा।

उधर राजा के हृदय में तो क्रोधाग्नि धधक रही थी। राज-कन्या की आहुती दे वह उसे शान्त करना चाहता था। राज-सभा में पहुँचते ही उसने मैना सुन्दरी को बुलाकर कहा–देख, अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है। तू कर्मवाद छोड़कर मेरा पक्ष ग्रहण कर। मेरी कृपा से तुझे इच्छित सुखों की प्राप्ति हो सकती है।

मैनासुन्दरी ने कहा–पिताजी ! यह मिथ्यावाद छोड़ दीजिये। इस संसार में हम लोगों को जो कुछ सुख-दुख मिलता है, वह कर्म के कारण मिलता है। अन्यान्य चीजें तो केवल निमित्त मात्र हो सकती हैं।

पिता-पुत्री का यह अप्रिय विवाद सुनकर लोग तरह-तरह की बातें करने लगे। कोई राजा को दोष देता, तो कोई राज-कन्या को। कोई कहता–राजा यह काम अच्छा नहीं कर रहे हैं, कोई कहता–राज-कन्या को इस समय मौका देख कर बात करनी चाहिये थी।

जिस समय राज-सभा में यह विवाद चल रहा था, उसी समय शहर में कोढ़ियों के दल ने प्रवेश किया। इस समय वे एक बरात के रूप में चले रहे थे। कोढ़ियों के राजा का नाम उम्बर राणा था। यह हमारे वही पूर्व-परिचित कुमार श्रीपाल थे। उनके ऊपर किसी कोढ़ी ने छत्र धर रखा था, तो कोई-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

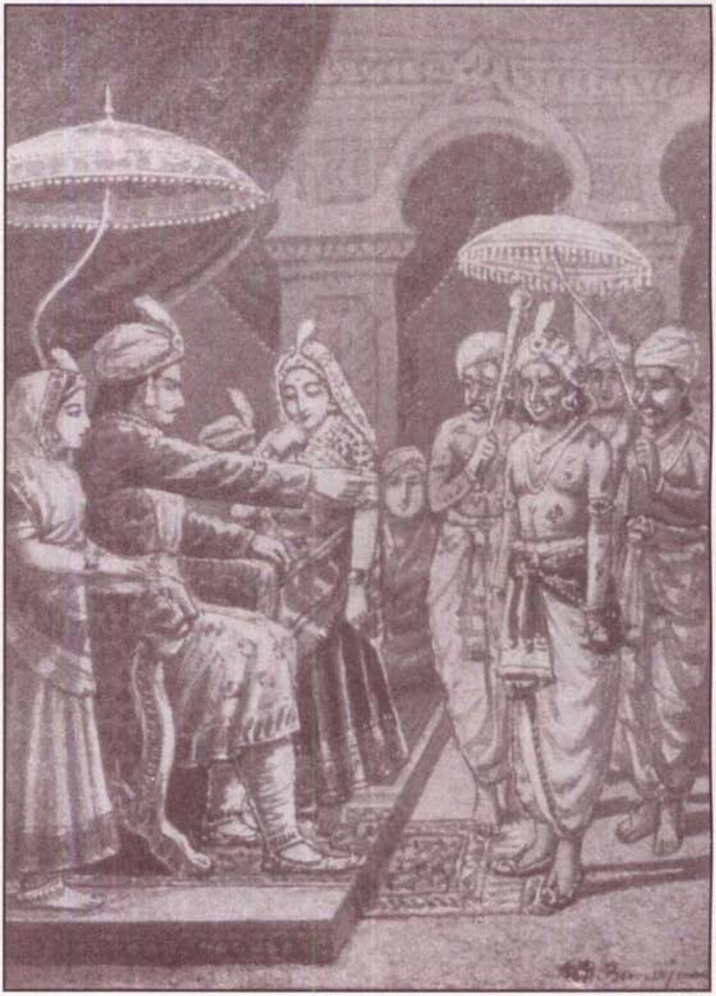

इसीको तुझे अपना जीवन-संगी बनाना होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई चवँर ढाल रहा था। आगे-आगे एक कोढ़ी छड़ीदार की भाति बिरदावली पुकारता जा रहा था। सबके बीच में उम्बर राना एक टट्टू पर बैठे हुए थे। वे ऐसे प्रतीत होते थे, मानों जले हुए बबुलों के बीच में एक आम्र-वृक्ष खड़ा हो। कोढ़ियों का दृश्य तो बहुत ही विचित्र था। गलित कुष्ट के कारण किसी के हाथ गल गये थे, कोई पंगु हो गया था, किसी की नाक गायब हो गई थी, तो किसी के कानों का ही पता न था। किसी के मुँह पर मक्खियाँ भिन-भिना रही थीं, किसी के मुँह से लार टपक रही थी और किसी के शरीर पर चकते ही चकते नजर आते थे। रास्ते में वे चलते समय बार-बार हर्ष-नाद करते थे। लोगों ने जब उनका परिचय पूछा तब उन्होंने बतलाया, कि राज-कन्या से उम्बर राणा का ब्याह होने वाला हैं और हम लोग उनकी बरात लिये जा रहे हैं। कोढ़ियों की यह बात सुनकर लोगों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। कौतूहल वश वे भी उनके साथ हो लिये। कुछ ही समय में कोढ़ियों और तमाशबीनों का यह दल राज सभा में जा पहुँचा।

उम्बर को देखते ही राजा ने मैना सुन्दरी से कहा–देख, मैना ! तेरे कर्म ने ही जोर मारा है। यह तेरा भावी पति है। इसी को तुझे अपना जीवन-संगी बनाना होगा।

राजा की यह बात सुन मैनासुन्दरी को जरा भी खेद न हुआ। उसका मुख-मण्डल ज्यों-का-त्यों प्रदीप्त और प्रसन्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बना रहा। वह अपने मन में कहने लगी–मुझे व्यर्थ ही क्यों शोक करना चाहिये। जो भाग्य में लिखा होगा, वही होगा। कर्म की रेख पर मेख कौन मार सकता है। फिर यह भी तो मेरा धर्म है, कि पिताजी चार जन के सामने जिसे मेरा पति नियत करें, उसे मैं तन-मन से पति-रूप में ग्रहण करूँ। ऐसा न करना भी कुल-कामिनियों के लिये कलंक की एक बात हो सकती है।

यह सोच कर मैना सुन्दरी ने उत्तर दिया–पिताजी! मैं आपकी यह व्यवस्था सहर्ष अंगीकार करती हूँ। मुझे इसमें जरा भी आपत्ति या संकोच नहीं है, आपकी आज्ञा पालन करने के लिये मैं सदा तैयार हूँ।

राज-कन्या की यह दृढ़ता और आत्म-विसर्जन देख सब लोग स्तम्भित हो गये। क्रोध के कारण राजा की बुद्धि मारी गयी थी, इसलिये उसके हृदय पर तो कोई प्रभाव न पड़ा, किन्तु इस घटना को देखकर सहृदय उम्बर राणाका हृदय काँप उठा। उसकी अन्तरात्मा पुकार उठी, कि ऐसी राज-कन्या से ब्याह कर उसका जीवन नष्ट करना भयंकर पाप है–अक्षम्य अपराध है। उसके हृदय में स्वभाविक मोह की अपेक्षा इस विवेक भावना का विशेष प्राबल्य था कि मेरे–संसर्ग से इस राज-कन्या का जीवन नष्ट न हो जाय। उसने राजा से कहा–राजन्! यह अनमेल विवाह ठीक नहीं। कौवे के गले में रत्न-हार शोभा नहीं दे सकता। गधे की पीठ पर अम्बारी नहीं शोभ सकती। अच्छा हो कि आप इस देव-कन्या सी राजकुमारी का ब्याह मेरे साथ न करें!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरुष-प्रकृति स्वाभाविक ही स्त्री-सौन्दर्य पर लुब्ध रहती है। पुरुष स्वयं चाहे जैसा रोगी दोषी हो, वह सदा इस सृष्टि-कानन के नारी पुष्प का रसास्वादन करने के लिये उत्कण्ठित रहता है। राणा उम्बर की यह बातें उसके महान त्याग एवं उच्च-प्रकृति की परिचायक थीं। एक पुरुष शायद ही कभी इससे बढ़कर त्याग कर सकता है। जिन लोगों ने उम्बर की यह बातें सुनीं, वे मन-ही-मन उसकी सहृदयता पर मुग्ध हो गये। उम्बर का शरीर ही दूषित था, मन नहीं। लोगों पर उसकी बातों का बहुत ही प्रभाव पड़ा; किन्तु राजा का पाषाण-हृदय टस-से-मस न हुआ। उसने कहा– "इसमें मेरा दोष नहीं। इस कन्या का अपने कर्म पर अटल विश्वास है। मैंने इसे बहुत समझाया, किन्तु इसने मेरी एक न सुनी। यदि इसके भाग्य में सुख बदा होगा, तो यह तेरे साथ भी सुखी रहेगी। मैं इस कन्या को इसके कर्मवाद के कारण यह दण्ड दे रहा हूँ। मैं यही देखना चाहता हूँ कि इसका कर्म इसे कहाँ तक सुखी बना सकता है?"

राजा का यह दुराग्रह देख सब लोग हताश हो गये। मन ही मन सब उसे भला बुरा कहने लगे, किन्तु किसी का कोई वश न था, इसलिये सब लोग चुप ही रहे। सूर्य को भी यह अनुचित कार्य देख कर इतनी ग्लानि हुई, कि वह भी अस्ताचल की ओर चले गये। रात को बिना किसी धूम-धाम के राजा ने उम्बर राणा के साथ मैनासुन्दरी का ब्याह कर दिया। अपने राजा को ऐसी सुन्दर रानी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिली हुई देखकर, कोढ़ियों को सीमातीत आनन्द हो रहा था। वे सब राज-कन्या को साथ ले, उसी तरह हर्ष मनाते, अपने निवास-स्थान को लौट आये।

राज-कन्यासे विवाह कर लेने पर भी उम्बर का विषाद अभी दूर नहीं हुआ था। उसे यह चिन्ता सता रही थी कि मेरे संसर्ग से राज-कन्या की यह कंचन जैसी काया भी नष्ट हो जायगी। उसने एकान्त-मिलन के समय मैनासुन्दरी से कहा-– "हे सुन्दरी! इसमें कोई सन्देह नहीं कि तुम्हारे पिताने यह बड़ा ही अनुचित कार्य किया; परन्तु मैं वैसा अविचारी नहीं हूँ। मैं चाहता हूँ कि तुम एक बार अच्छी तरह से विचार कर लो, ताकि फिर पश्चात्ताप न करना पड़े। हम लोग परिणय सूत्र में बंध जाने पर भी, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम आजीवन मुझसे पृथक् रह सकती हो। इसमें किसी प्रकार की लज्जा या संकोच को स्थान देना ठीक नहीं। तुम अच्छीतरह विचार कर लो। मेरे स्पर्श से तुम्हें भी यही रोग हो जायेगा और तुम भी मेरी ही तरह कुरूप हो जाओगी! कहो, तुम्हें इन दोनों में से कौन सी बात पसन्द है?"

उम्बर की यह बातें सुन मैनासुन्दरी की आँखों से अश्रुधारा बह चली। उसने कहा– "स्वामिन्! आप ऐसी बाते न कहिये। इन बातों से मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। क्या आप नहीं जानते कि भारतीय रमणियों का पति ही जीवन सर्वस्व होता है। मैं तन-मन से आपकी हो चुकी हूँ। मुझपर आपका पूर्ण अधिकार है। पति-पत्नी के पृथक् रहने की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्पना भी नहीं की जा सकती। हम लोगों में जो सम्बन्ध स्थापित हो चुका है, वह मृत्यु के बाद ही भंग हो सकता है। किसकी सामर्थ्य है कि एक सती स्त्री को उसके पति से पृथक रख सके? आप इस संकोच को छोड़ दीजिये। मैं आपकी दासी हूँ। आप मेरे नाथ हैं। मेरे प्राण हैं—मेरे जीवन धन हैं। मैं हर तरह से आपकी सेवा कर आपको आराम पहुँचाऊँगी। सुख-दुःख और रोग-शोक तो भाग्य की देन है। जो बदा होगा, वही होगा। हमें अकारण ही उसकी चिन्ता न करनी चाहिये।"

मैनासुन्दरी और उम्बर में रात भर इसी तरह की बातें होतीं रहीं। दोनों ने एक दूसरे के हृदय को पहचान लिया। दोनों के हृदय दाम्पत्यप्रेम से पूरित हो गये। मैनासुन्दरी के चेहरे पर दूना तेज चमकने लगा। मानो आज अनाथ से सनाथ हो गयी थी। सूर्य ने भी उदयाचल से इस सती के दर्शन कर अपने को धन्य समझा। मैनासुन्दरी को न जाने क्यों आज प्रभात बड़ा ही मनोरम प्रतीत होता था। चारों ओर उसे कुछ नवीनता सी दिखायी देती थी, उसे समझ न पड़ता था कि वह स्वयं बदल गयी है। आज उसकी भावनाओं का स्रोत दूसरी ही ओर प्रवाहित हो रहा था। आज उसकी मति, गति, पति-देव के ही चरणों में, केन्द्रीभूत हो रही थी। इसी लिये आज उसे समस्त संसार बदलता हुआ दिखायी देता था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभात होते ही उसने बड़े प्रेम से उम्बर राणा को जगाया। नित्य-कर्म से निवृत्त होने के बाद मैनासुन्दरी ने अनुरोध किया कि चलो, हम लोग देव-दर्शन करने चलें। उम्बर ने बिना किसी आपत्ति के उसका अनुरोध स्वीकार कर लिया। दोनों ने बड़े प्रेम से जिन-मन्दिर की ओर प्रस्थान किया।

श्री ऋषभदेव भगवान के दर्शन कर उम्बर राणा अर्थात् श्रीपाल-कुमार रंग-मण्डप में बैठकर स्तुति करने लगे। मैनासुन्दरी ने भी निर्मल जल से स्नान कर परमात्मा की पूजा की। चन्दन कर्पूरादि चढ़ाया। गले में पुष्प-माला पहनाकर हाथ में फूलों का गुच्छा अर्पित किया। द्रव्य-पूजा करने के बाद उसने भाव-पूजा की और चैत्यवन्दन कर परमात्मा की स्तुति करने लगे। वह कहने लगी—"हे परमात्मा! आप जगत में चिन्तामणि रत्न के समान हैं। जन्म जन्मान्तर हमें केवल आप ही का सहारा है। आपही के अनुग्रह से प्राणियों का दुःख-दुर्भाग्य दूर हो जाता है।"

इस प्रकार स्तुति कर मैनासुन्दरी ने कायोत्सर्ग किया। उसी समय प्रभु के गले की पुष्प-माला और हाथ का श्रीफल अपने आप श्रीपाल की ओर आता हुआ दिखायी दिया। श्रीपाल ने तुरन्त खड़े होकर वे दोनों ले लिये। मैनासुन्दरी ने कायोत्सर्ग पूर्ण किया। पति के हाथ में पुष्प-माला और श्रीफल (बिजोरा) देखकर मैनासुन्दरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

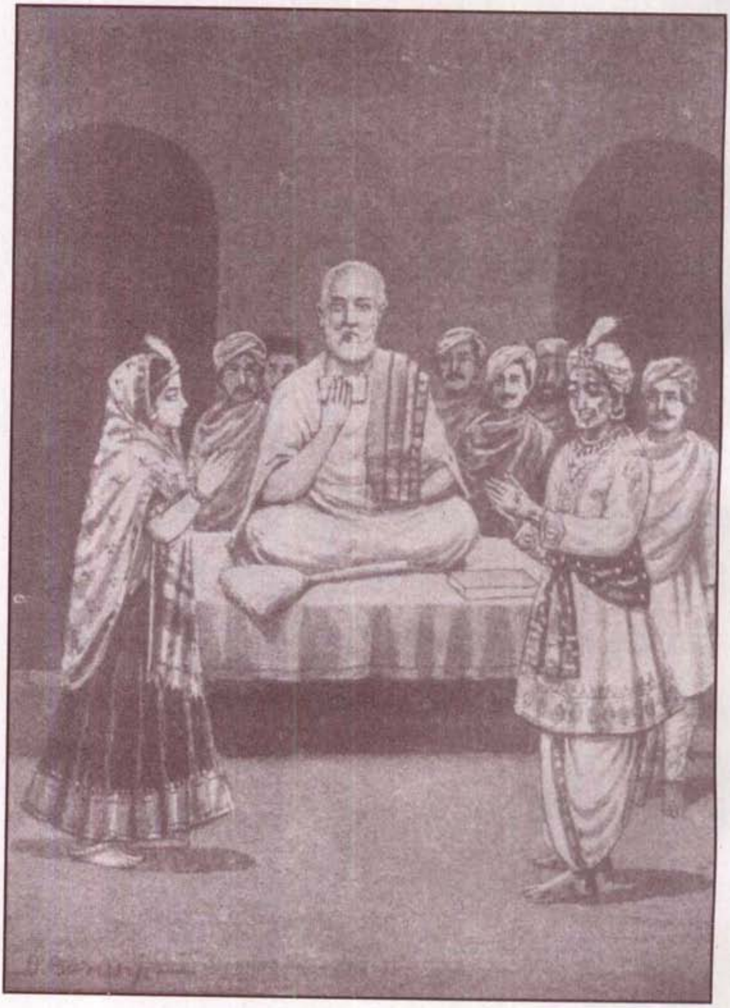

आज हम तुझे अकेली क्यों देख रहे हैं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को बहुत ही आनन्द हुआ। उसने कहा कि निःसन्देह यह शासन देवताओं की प्रसन्नता का ही फल है

जिन-मन्दिर के पास ही पौषधशाला में गुरु महाराज देशना दे रहे थे। परमात्मा को पुनः वन्दन कर वे दोनों वहाँ गये और गुरुदेव को वन्दना कर उनके निकट स्थान ग्रहण किया। गुरुदेव ने दोनों को धर्मलाभ प्रदान कर उपदेश देते हुए कहा– "तुम्हें अनेक जन्मों के बाद यह मनुष्य का जन्म मिला है। इसलिये निद्रा और अभिमान का त्याग कर इसे सार्थक करो। ऐसा अपूर्व अवसर जो लोग यों ही खो देते हैं वे लोग मक्खीचूस की तरह हाथ मल-मल कर पछताते हैं। ध्यान रक्खो कि धर्माराधना का यह अवसर एक बार हाथ से निकल जाने पर फिर पश्चाताप के सिवा और कुछ नहीं हाथ आता।"

यह उपदेश देते समय गुरुदेव की दृष्टि मैनासुन्दरी पर पड़ी। वे तुरन्त उसे पहचान गये। उन्होंने पूछा– "हे राजपुत्री! अबतक तो तू अनेक दास-दासियों के साथ यहाँ आती थी। आज हम तुझे अकेली क्यों देख रहे हैं?"

मैनासुन्दरी ने गुरुदेव को सारा वृत्तान्त कह सुनाया। अन्त में वह बोली– "महाराज! मुझे और किसी बात का दुःख नहीं है। दुःख केवल यही है, कि लोग अज्ञानता के कारण जिनशासन की निन्दा करते हैं। यह मुझसे सहा नहीं जाता।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुने कहा—"हे बाला! संसार में सभी तरह के मनुष्य हैं। तुझे इसके लिये चिन्ता न करनी चाहिये। धर्म के प्रभाव से चिन्तामणि रूप यह पुरुष तेरे हाथ लगा है। यह बहुत ही भाग्यशाली है। यथासमय यह राजाओं का राजा होगा और सब लोग इसके चरणों में आकर प्रणाम करेंगे।"

मैनासुन्दरी ने गुरुदेव से प्रार्थना की—"महाराज! मुझे आपकी बातों पर पूर्ण विश्वास है। जो आपने बतलाया है, वह अवश्य ही किसी दिन सत्य प्रमाणित होगा। किन्तु इस समय शास्त्रों को देखकर कोई ऐसा उपाय बतलाइये जिससे आपका यह श्रावक व्याधिमुक्त हो सके।"

गुरु ने कहा —"जड़ी, बूटी, मंत्र, तन्त्र, यन्त्र विद्या और औषधि यह किसी को बताना उत्तम मुनि का आचार नहीं। तथापि यह पुरुष परम धर्म-निष्ठ होगा, इसलिये मैं तुम्हें एक यंत्र बतलाता हूँ। यह यन्त्र बहुत ही चमत्कारिक है।"

इतना कह, गुरू महाराज ने शास्त्र और धर्म-ग्रन्थों का मन्थन कर सिद्धचक्र नामक एक यन्त्र खोज निकाला। उस यन्त्र में 'ओं ह्रीं' सहित अरिहन्तादि नवपद और गुरु द्वारा ज्ञान करने योग्य और भी कई मन्त्राक्षर थे। उस यन्त्र के मध्य भाग में अरिहन्त और चारों दिशाओं में सिद्ध, आचार्य उपाध्याय और साधु-पद की स्थापना की गयी थी। चारों विदिशाओं में दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चार पदों की स्थापना की थी। गुरुदेव ने बतलाया, कि इसे 'अष्ट-दल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कमल' यन्त्र कहते हैं। यह सब यंत्रों में श्रेष्ठ है। विशुद्ध मन से इसकी आराधना करने से समस्त कार्य सिद्ध होते हैं। इस यन्त्र की आराधना के लिये आश्विन शुक्ल सप्तमी से आश्विन शुक्ल पूर्णिमा तक और चैत्र शुक्ल सप्तमी से चैत्र शुक्ल पूर्णिमा तक नव दिन आयम्बिल व्रत करना चाहिये। इन नव दिनों में प्रति दिन तीनों काल श्रीजिनेश्वर की अष्ट प्रकार पूजा करनी चाहिये। भूमिपर शयन, ब्रह्मचर्य का पालन, प्रत्येक पद की बीस-बीस नवकारवालियाँ गिनना, त्रिकाल देव-वन्दना, दोनों समय प्रति-क्रमण और गुरु की वैयावच्च भी करनी चाहिये। इनके अतिरिक्त धर्मोपदेश सुनना, शरीर को वशीभूत रखना, विचार-पूर्वक बोलना और सिद्धचक्र यन्त्र को पञ्चामृत से प्रक्षालन कर उसका पूजन करना भी आवश्यक है। नवें अर्थात् अन्तिम दिन में; अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक भक्ति करनी चाहिये।

इस प्रकार नव ओली अर्थात् ८१ आयंबिल करने से नवपद की आराधना समाप्त होती है। इस तप में सब मिलाकर साढ़े चार वर्ष का समय लगता है। तप की समाप्ति होने पर यथाशक्ति दान-धर्म करना चाहिये। इससे जन्म-जन्मान्तर में सब प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है।

इस यन्त्र की आराधना के फल के सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा, कि इससे समस्त दुःखों का नाश होता है। इसके प्रक्षालन-जल से चौरासी प्रकार के वायु और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगंदरादि महा व्याधियों से छुटकारा मिलता है। इससे निर्धनोंको धन की और निःसन्तानों को सन्तान की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार आराधना-विधि और महिमा बतलाकर गुरुदेवने यह महायन्त्र लिखकर मैनासुन्दरी को प्रदान किया। उस समय वहाँ जो श्रावक-गण उपस्थित थे, उन्हें उपदेश देते हुए गुरु ने कहा—"यह दोनों स्त्री-पुरुष बहुत ही गुण-निधान हैं। इनकी यथाशक्ति तुम लोग सेवा करना। इस संसार में साधर्मिक भाई से बढ़कर और कोई नाता नहीं हो सकता। यही वास्तविक नाता है। स्वधर्मावलम्बी बन्धु को सहायता करने से समकित भी निर्मल हो जाता है।"

गुरुदेव का यह उपदेश, सुन श्रावकों के हृदय में श्रीपाल और मैनासुन्दरी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। वे उन्हें अपने घर ले गये और वहाँ सिद्धचक्र की आराधना के लिये सब प्रकार की सुविधायें कर दी। मैनासुन्दरी और श्रीपाल इसके लिये उन्हें धन्यवाद दे, आराधना कार्य में लीन हुए।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

चौथा परिच्छेद

रोग से मुक्ति

श्रीपाल और मैनासुन्दरी ने गुरु के आदेशानुसार आश्विन शुक्ला सप्तमी से ओली करना आरम्भ किया और गट्-विगयों का त्याग कर रोज आयम्बिल करने लगे। साथ ही मैनासुन्दरी श्री अरिहन्त भगवान की अष्ट-प्रकारी पूजा भी करने लगी। इस प्रकार एकाग्रता पूर्वक जिन-भक्ति करने से पाप-प्रकृति का नाश होने लगा। पहले आयम्बिल में सिद्धचक्र के न्हवन से रोग का मूल नष्ट होकर अन्तर का दाह शान्त हुआ। दूसरे आयम्बिल में विरूप चमड़ा सुधर कर उसका रंग परिवर्तित होने लगा। इस प्रकार ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, त्यों-त्यों श्रीपाल की सुन्दरता बढ़ती गयी और राग शमित होता गया। जब नव आयम्बिल पूरे हुए तब समस्त व्याधियाँ दूर हो गयीं और शरीर पूर्णतः रोग मुक्त हो गया। अब श्रीपाल की कंचन-सी काया देखकर सब लोग आश्चर्य करने लगे।

मैनासुन्दरी ने कहा :— "स्वामिन् ! यह सब गुरुदेव का ही प्रताप है। संसार में माता-पिता, बन्धु-बान्धव, स्त्री-पुत्र प्रभृति अनेक शुभचिन्तक होते हैं, किन्तु गुरु के समान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृपालु और हितैषी दूसरा कोई नहीं होता। गुरुदेव इह लोक के कष्ट दूर करते रहते हैं परलोक के कष्टों से बचाते हैं, सद्बुद्धि प्रदान करते हैं और तत्त्वा-तत्व एवं कर्तव्या-कर्तव्य बतलाते हैं। ऐसे गुरुदेव को और ऐसे जैन-धर्म को धन्य है।"

श्रीपाल ने भी मैनासुन्दरी की बातों का अनुमोदन किया और धर्म की प्रशंसा करते हुए दोनों बोधि-बीज सम्यक्त्व को प्राप्त हुए। इसके बाद उन्होंने अपने दल के ७०० कोढ़ियों पर भी सिद्धचक्र का न्हवन-जल छिड़का। यह जल पड़ते ही वे भी रोग-मुक्त हो गये। कुछ दिनों के बाद उन सबों ने अपने-अपने घर जाने की आज्ञा माँगी। श्रीपाल ने सहर्ष आज्ञा प्रदान कर सबको उनके घर भेज दिया।

एक दिन श्रीपाल कुमार जिन-मन्दिर में दर्शन करने गये। दैवयोग से लौटते समय मार्ग में माता से भेंट हो गयी। श्रीपाल ने बहुत ही आदर और प्रेम से माता को प्रणाम किया। इस भेंट से दोनों को असीम आनन्द हुआ। उनके हृदय पुलकित हो उठे। कंठ गद्गद् हो गया और नेत्रों से हर्ष के आँसू बह चले। इसी समय वहाँ मैनासुन्दरी भी आ पहुँची। आकार-प्रकार से उसने तुरन्त ही अपनी सास को पहचान लिया। बड़े आदर से पैर छुए। सास ने भी शिर पर हाथ फेर मंगल-आशीर्वाद दिया। पुत्र की निरोगिता और पुत्र-वधू की सुशीलता देख रानी कमलप्रभा का हृदय हर्ष के मारे उछलने लगा। श्रीपाल ने कहा—"माता जी! यह सब आपकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिरपर हाथ फेर मंगल-आशीर्वाद दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुत्र-वधू का ही प्रताप है। इसी के प्रताप से मैं निरोग हुआ और इसी के उपदेश से मुझे जैन धर्म की प्राप्ति हुई है।" यह सुन कमलप्रभा ने पुनः अपनी पुत्र-वधू को हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया।

कमलप्रभा अपने पुत्र की उन्नति, रोग-मुक्ति और विवाह का समाचार पहले ही सुन चुकी थी, इसीलिये यह सब बातें उसे बतलानी न पड़ीं। उसने श्रीपाल को अपनी आत्म-कथा बतलाते हुए कहा—"पुत्र! तुझे शायद स्मरण होगा, कि कोढ़ियों के संसर्ग से जब तुझे भी यह घृणित रोग हो गया, तब मैं तुम्हें कोढ़ियों को सौंप, वैद्य की खोज में निकल पड़ी थी। रास्ते में मैंने सुना कि कौशाम्बी में एक अच्छे वैद्य रहते हैं, जो इस व्याधि को निर्मूल कर सकते हैं। यह सुन, मैंने कौशाम्बी नगरी का रास्ता लिया।

रास्ते में मुझे एक ज्ञानी गुरु मिले। मैंने उन्हें नमस्कार कर निवेदन किया कि—हे भगवन्! दुर्भाग्यवश मैंने अबतक अनेक कष्ट सहन किये हैं। पति का वियोग हुआ, राज्य गया, ऐश्वर्य गया, सुख-समृद्धि से हाथ धोने पड़े और अन्त में अनाथ की भाँति वन-वन भटकना पड़ा; किन्तु इससे भी दैव को सन्तोष न हुआ। मेरा एकमात्र पुत्र, जिसे मैं दुःख के दिनों में देखकर अपना दुःख भूल जाती थी, जो मेरे जीवन का एकमात्र सहारा था, वह भी कुष्ट-व्याधि से ग्रसित हो गया। हे कृपानिधान! कृपया बतलाइये, कि मेरा वह लाल इस रोग से कब मुक्त होगा?"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु महाराज बड़े ही ज्ञानी थे, उन्होंने मुझे सान्त्वना देते हुए कहा—"तुम्हें अब पुत्र के दुःख से दुःखित होने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे पुत्र को कोढ़ियों ने बहुत ही यत्न से रक्खा था। उन्होंने उसे अपने राजा बनाया था। उस समय उम्बर राणा के नाम से उसने यथेष्ट कीर्ति लाभ की थी! कोढ़ियों की चेष्टा और अपने सौभाग्य के कारण मालव-राजा की राजकन्या से उसका विवाह भी हो गया। पत्नी के कहने से तुम्हारे पुत्र ने आयम्बिल का तप और सिद्धचक्र की आराधना की । इससे वह अब पूर्णतः रोग-मुक्त हो गया है। इस समय वह उज्जयिनी में रहता है। सिद्धचक्र के प्रताप से भविष्य में उसकी बड़ी उन्नति होगी। वह अनेक राज्य प्राप्त करेगा, और किसी समय राजाओं का राजा होगा।"

गुरु महाराज की यह बातें सुन, मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ। मैं तुरन्त ही इस ओर चल पड़ी। यहाँ तुम्हें पाकर मुझे ऐसा आनन्द हो रहा है, जैसे कृपण को खोया हुआ धन मिल गया हो—अन्धे को आँखें मिल गयी हों!

माता की यह बातें सुन, श्रीपाल और मैनासुन्दरी को परम आनन्द हुआ। माता को साथ ले, वह अपने निवास स्थान में गये और वहाँ तीनों आनन्द पूर्वक रहने लगे।

एक दिन तीनों जिन-मन्दिर में दर्शन करने गये। दर्शन करने के बाद वे चैत्यवन्दन करने लगे। श्रीपाल मधुर कण्ठ से चैत्यवन्दन कर रहे थे और सास-बहू उसे प्रेमपूर्वक सुन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रही थीं। इसी समय मैनासुन्दरी की माता रूपसुन्दरी भी वहाँ दर्शन करने आ पहुँची।

पाठक! शायद अभी रूपसुन्दरी को भूले न होंगे। जिस समय प्रजापालने क्रुद्ध हो कोढ़ी के साथ मैनासुन्दरी का ब्याह कर दिया, उस समय से उसे कुछ विरक्ति सी उत्पन्न हो गयी। वह अपने मायके चली आयी और पुत्री के दुःख से दुखी रहने लगी। आज जिन वाणी का स्मरण होनें पर वह अपने समस्त दुःखों को भूल कर दर्शन करने आयी थी। दर्शन कर जिनमन्दिर से लौटते समय मैनासुन्दरी पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह तुरन्त उसे पहचान गयी; किन्तु उसके समीप किसी पर-पुरुष को देख, वह मन में न जाने क्या-क्या सोचने लगी।

उसने अपने दामाद को कभी देखा न था। केवल इतना ही सुना था, कि किसी कोढ़ी के साथ मैनासुन्दरी का विवाह कर दिया गया है। इसीलिये, मैनासुन्दरी के साथ इस समय किसी सुन्दर पुरुष को देख, वह चौक पड़ी। वह सोचने लगी कि —"अवश्य , मैना ने उस कोढ़ी पति का त्याग कर, इस सुन्दर पुरुष को अपना तन-मन अर्पण कर दिया है।" उस विचार से उसे बहुत ही खेद हुआ। वह अपने मन में कहने लगी :— "हे ईश्वर! तूने इस कुल-कलंकिनी पुत्री की माता मुझे क्यों बनाया? यह उत्पन्न होते ही क्यों न मर गयी कि, आज मुझे इस तरह परिताप तो न करना पड़ता।" इस दुःख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के कारण उसकी आँखों में आँसू भर आये और वह वहीं बैठकर रोने लगी।

चैत्यवन्दन पूर्ण होने पर मैनासुन्दरी का ध्यान अपनी माता की ओर आकर्षित हुआ। वह तुरन्त ही उसके पास दौड़ गयी। परन्तु रूपसुन्दरी ने तो उसे स्पर्श करना एवं उससे बोलना भी पाप समझा। मैनासुन्दरी तुरन्त इसका कारण समझ गयी। उसने माता के पैर छूकर कहा :– माता! आप हर्ष के बदले शोक क्यों कर रही हैं? जिनेश्वर भगवान की असीम कृपा से मेरे पति-देव रोग-मुक्त हो गये हैं; किन्तु हम लोगों को जिन-मन्दिर में सांसारिक बातें न करनी चाहिये। इससे आशातना लगती है। आप दर्शन कर, बाहर आइये और हमलोगों के साथ हमारे घर चलिये। वहाँ पर मैं आपसे यह सब बातें विस्तार पूर्वक कहूँगी।

रूपसुन्दरी को इन बातों से कुछ सन्तोष हुआ। वह मैनासुन्दरी के साथ उसके घर गयी। वहाँ श्रीपाल और कमलप्रभा के सम्मुख उसने अपनी माता से सब हाल कह सुनाया। सच्ची बातें मालूम होने पर रूपसुन्दरी को बहुत ही आनन्द हुआ। वह बारंबार अपने और अपनी पुत्री के भाग्य को सराहने लगी।

अन्त में कमलप्रभा ने रूपसुन्दरी से कहा :— "आपके कुल को धन्य है। आपकी कुलीन पुत्री ने हमारे कुल का उद्धार किया है। हम लोग इसके बहुत ही ऋणी हैं। इसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारण हमें जैनधर्म की प्राप्ति हुई है और इसीने हमें समस्त दुःखों से मुक्त किया है।"

पुत्री की यह प्रशंसा सुन रूपसुन्दरी को बहुत आनन्द हुआ। उसने कहा :— "यह हमारे और मैनासुन्दरी के सुकृत्यों का ही परिणाम है कि, जो बिगड़ा हुआ था, वह भी बन गया और दुःख सुख के रूप में परिणत हो गया। मुझे अब केवल एक ही बात जानने की अभिलाषा है। मैं आपके कुल और वंश से परिचित नहीं हूँ। यदि आप लोग मुझे अपने कुल और वंश का परिचय देंगे तो बड़ी कृपा होगी।"

रूपसुन्दरी की यह बात सुन, कमलप्रभा ने अपना समस्त पूर्व-वृत्तान्त विस्तार-पूर्वक कह सुनाया। रूपसुन्दरी को जब यह मालूम हुआ कि उसकी पुत्री का विवाह एक राज-कुमार के ही साथ हुआ है, तब उसके आनन्द की सीमा न रही। उसने कहा :— "वास्तव में मेरी पुत्री परम सौभाग्यवती है। इसने दोनों कुल का मुख उज्ज्वल कर दिया है।"

रूपसुन्दरी इन लोगों से बिदा हो, जब अपने निवास-स्थान में पहुँची, तब उसने अपने भाई पुण्यपाल से यह सब बातें कह सुनायीं। सुनकर उसे बहुत ही आनन्द हुआ। वह अपनी चतुरंगिनी सेना लेकर बड़े आडम्बर से श्रीपाल के निवास स्थान में गया और आग्रह पूर्वक श्रीपाल, मैनासुन्दरी और कमलप्रभा को अपने महल में ले आया। वहाँ उसने इन लोगों के लिये एक बहुत बड़े निवास-स्थान का प्रबन्ध कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिया। इनकी समस्त सुविधाओं पर ध्यान रखने लगा। अब अपनी माता और पत्नी समेत श्रीपाल कुमार के दिन यहाँ बड़े आनन्द से कटने लगे।

एक दिन श्रीपाल और मैनासुन्दरी महल के झरोखे में बैठे हुए थे। चौक में नाना प्रकार के नाच-गान हो रहे थे। झरोखे से दोनों जन इसका आनन्द ले रहे थे। इसी समय बगीचे से लौटते हुए राजा प्रजापाल की सवारी वहीं पर आ निकली। नाच-गान होते देख, क्षण भर के लिये वह वहाँ ठहर गया। जब उसकी दृष्टि उस झरोखे पर पड़ी, तब उसे स्वाभाविक ही यह जानने की इच्छा हुई, कि यह दोनों कौन हैं? ध्यान-पूर्वक देखते ही वह मैनासुन्दरी को पहचान गया; किन्तु उसके पास देवकुमार जैसे पुरुष को बैठा हुआ देख, उसे बहुत ही दुःख हुआ। वह भी रूपसुन्दरी की भाँति भ्रम में पड़ गया। उसे इस बात के लिये परिताप होने लगा कि–मैं अविचार-पूर्वक क्या कर बैठा? क्यों मैंने क्रोध में आकर कोढ़ी के साथ इसका व्याह कर दिया? निःसन्देह यह मेरे ही दुष्कर्मों का परिणाम है। मेरे ही कारण मेरे कुल में यह कलंक लगा!

इन विचारों के कारण राजा प्रजापाल का चेहरा फीका पड़ा गया। पुण्यपाल दूर से राजा की भाव भंगियों का निरीक्षण कर रहा था। इस अवसर को उपयुक्त समझकर वह राजा प्रजापाल के पास गया और कहने लगा :—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"हे राजेन्द्र ! आप इतने उदास क्यों हो रहे हैं? अन्दर आइये और अपनी कन्या तथा दामाद से मिलकर हर्ष प्राप्त कीजिये। आपके दामाद सिद्धचक्र के प्रताप से रोग मुक्त हो गये हैं। उनकी सभी विपत्तियों का अन्त आ गया है।" इसके बाद उसने राजा प्रजापाल को सब बातें विस्तार-पूर्वक कह सुनायीं और सम्मान पूर्वक उसे अपने महल में लिवा ले गये।

पुण्यपाल की बातें सुन राजा प्रजापाल को बड़ा आनन्द हुआ। महल में पहुँचने पर वह श्रीपाल और मैनासुन्दरी से सहर्ष मिला। जैनधर्म की प्रशंसा करते हुए उसने मैनासुन्दरी से कहा :— "पुत्री ! तूने राज-सभा में जो बातें कही थीं, वे बिलकुल सच थीं। मैंने अज्ञानता के कारण जो बातें कहीं थीं, वे ठीक न थीं। तुझे दुःख देने में कोई कसर न रखी थी; परन्तु वही सब बातें तेरे लिये सुख का कारण हो गयीं। मुझे यह देखकर विश्वास हो गया है कि संसार में कर्म का ही प्राधान्य है। मनुष्य का सोचा हुआ कुछ नहीं होता। मैंने मूर्खतावश अपना प्रभाव दिखाने की व्यर्थ ही चेष्टा की थी। मैं अब अपनी भूल समझ गया। मुझे अपने दुष्कर्म के लिये बहुत ही पश्चात्ताप हो रहा है।"

मैनासुन्दरी ने प्रेम-पूर्वक कहा :— "पिताजी ! इसमें आपका कोई दोष नहीं। संसार के प्राणी मात्र कर्म के अधीन हैं। राजा और रंक दोनों ही उसके निकट समान हैं। मेरे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाग्य में जितना दुःख भोगना लिखा था, उतना दुःख मैंने भोग लिया। जब सुख के दिन आये तब पुनः सुख की प्राप्ति हुई। इसके लिये आप जरा भी खेद न करें।"

इसके बाद राजा प्रजापाल रानी रूपसुन्दरी से मिला। वह रुष्ट हो गयी थी, इसलिये राजा ने उसके निकट अपना पश्चात्ताप प्रकट कर उसे मना लिया। इसके बाद वह शीघ्र ही बड़ी धूम-धाम से श्रीपाल और मैनासुन्दरी को अपने महल में ले गया। वहाँ वे सब लोग आनन्द पूर्वक रहने लगे। इस घटना से समूचे शहर में जैन धर्म का जय-जयकार होने लगा। मैना सुन्दरी की भी चारों ओर भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँचवाँ परिच्छेद

विदेश-यात्रा

एक दिन सन्ध्या के समय थोड़े से चुने हुए सवारों के साथ श्रीपालकुमार शहर में घूमने निकले। इस समय उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न था। वे राजसी ठाठ से रहते थे। दासदासियाँ हुक्म बजाने के लिये हाथ बाँधे खड़ी रहती थीं। पानी माँगने पर दूध मिलता था। कहने का तात्पर्य यह कि वे सब तरह से सुखी थे। ऐसी अवस्था में उनका रूपसौन्दर्य बढ़ जाना भी स्वाभाविक था। जिस समय वे घोड़े को नचाते हुए शहर की सड़कों से निकले, उस समय उज्जैन की प्रजा उन्हें देखने के लिये उमड़ पड़ी। रास्ते में मकानों की खिड़कियाँ, झरोखों और छतों में जहाँ देखिये, वहीं स्त्री पुरुषों के झुण्ड खड़े दिखायी देते थे। जब तक श्रीपाल की सवारी दूर न निकल जाती, तब तक लोग उसकी ओर टक-टकी लगाये देखा करते । कहीं उनपर पुष्प बरसाये जाते थे और कहीं उनकी जय पुकारी जाती थी। समूचा शहर उस समय हर्ष और उल्लास की तरंगों में प्रवाहित हो रहा था।

जिस समय यह सवारी एक चौराहे पर पहुँची, उस समय दैव-योग से एक ऐसी घटना घटित हुई, जिसने श्रीपाल की जीवन-धारा को ही बदल दिया। श्रीपाल ने देखा कि एक बुढ़िया और उसकी कई पुत्रियाँ खड़ी हुई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। श्रीपाल को देखकर एक लड़की ने उस बुढ़िया से पूछा :— 'माता ! घोड़े को नचाता हुआ यह जो सुन्दर पुरुष जा रहा है, सो कौन है? इन्द्र है, चन्द्र है या कोई चक्रवर्ती है?' बुढ़िया ने उच्च स्वर से उत्तर दिया कि :-— 'बेटी! यह हमारे राजा जी के दामाद हैं।'

बुढ़िया की यह बात श्रीपाल ने सुन ली। उन्हें इसी समय स्मरण हो आया कि—जो लोग अपने गुण से प्रसिद्ध होते हैं, वे उत्तम कहलाते हैं। जो लोग अपने पिता के नाम से प्रसिद्ध होते हैं, वे मध्यम होते हैं, जो लोग मामा के नाम से प्रसिद्ध होते हैं, वे अधम कहलाते हैं और जो लोग अपने श्वसुर के नाम से प्रसिद्ध होते हैं, वे अधमाधम कहलाते हैं। श्रीपाल अपने मन में कहने लगे कि:—मुझे धिक्कार है, कि ससुराल में रहने के कारण अपने गुण और अपने नाम से नहीं बल्कि ससुर के नाम से पहचाना जाता हूँ। इस अवस्था का जैसे हो वैसे अन्त लाना चाहिये।

इस विचार के कारण श्रीपाल-कुमार का चित्त उदास हो गया। जिस समय वे महल में पहुँचे, उस समय भी उनकी यही अवस्था थी। पुण्य पाल उन्हें देखते ही ताड़ गया कि आज अवश्य कोई नयी बात हुई है। उसने श्रीपाल से पूछा :- 'क्यों कुमारजी! आज आपके चेहरे पर उदासीनता की श्याम घटा क्यों दिखायी दे रही है? आपके हृदय में यदि कोई नयी भावना उत्पन्न हुई हो, तो उसे तुरन्त व्यक्त करें। हमलोग उसकी पूर्ति के लिये भरसक चेष्टा करेंगे। क्या आप चम्पा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नगरी का राज्य तो हस्तगत नहीं करना चाहते? आज्ञा हो तो इसके लिये भी हम तैयार हैं।'

श्रीपाल ने कहा– 'चम्पा नगरी का राज्य तो अवश्य किसी दिन हस्तगत करना है, किन्तु ससुर की सहायता से राज्य प्राप्त करना ठीक नहीं। मैं पहले विदेश की यात्रा करूँगा। अनेक देश देखूँगा। अपने बाहु-बलसे धनोपार्जन करूँगा। फिर बाद को जैसा उचित प्रतीत होगा, वैसा करूँगा।'

इसी समय वहां कमलप्रभा आ पहुँची। उसने पुत्र को विदेश-गमन की तैयारी करते देख कहा;– "पुत्र! यदि तू विदेश जायगा तो मैं भी तेरे साथ चलूंगी। तू ही एक मात्र मेरा जीवनधन है। मैं जीते जी तुझे अपनी आँखों के ओट न होने दूँगी।"

श्रीपाल कुमार ने नम्रता पूर्वक कहा :—"माताजी! आपका कहना ठीक है; किन्तु परदेश में किसी प्रकार का बन्धन रहने से स्वेच्छा पूर्वक धनोपार्जन करने में बाधा पड़ती है। आप समझदार हैं। मैं भी अब नादान नहीं हूँ। मुझे केवल आपके आशीर्वाद की आवश्यकता है। मैं शीघ्र ही अनेक प्रकार की ऋद्धियाँ प्राप्त कर आपकी सेवा में उपस्थित होऊँगा।"

पुत्र की यह बातें सुन कमलप्रभा ने तुरन्त उसे आज्ञा दे दी। उसने समयोचित उपदेश देते हुए कहा :– "जहाँ तक हो सके, शीघ्र ही लौट आना। विदेश में किसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार का कष्ट या संकट आ पड़े तो नवपद का ध्यान करना। रात को जागते रहना और निरन्तर सावधान रहना। मैं आशीर्वाद देती हूँ कि सिद्धचक्र की अधिष्ठायक देवदेवियाँ मार्ग में तुम्हारी रक्षा करें।"

इस प्रकार माता ने तो आज्ञा दे दी; किन्तु मैनासुन्दरी किसी प्रकार श्रीपाल को छोड़ना न चाहती थी। उसने कहा :—"प्राणनाथ! मैं तो आपके साथ ही रहूँगी। छाया और काया को एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। रास्ते में आपकी सेवा करनेवाला भी तो कोई चाहिये। मैं एक क्षण भी आपका वियोग सहन न कर सकूँगी। दावानल के तापसे बिरहानल का ताप कहीं अधिक प्रखर होता है।"

श्रीपाल ने मैनासुन्दरी को आश्वासन देकर कहा :— "प्रिये! तुम्हें यहीं रहना उचित है। माता की सेवा के लिये भी तुम्हारी उपस्थिति आवश्यक है। मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा। इस समय तुम्हें मेरे साथ चलने का आग्रह न करना चाहिये।"

मैनासुन्दरी ने पति की आज्ञा सहर्ष मान ली। उसने कहा:—"यदि आपकी यही आज्ञा है कि मैं साथ न चलूँ तो मैं ऐसा ही करूँगी, किन्तु आप यह निश्चय जानियेगा, कि मेरा शरीर यहाँ और प्राण आपके साथ रहेगा। अधिक क्या कहूँ? शीघ्र वापस आइयेगा। यदि विदेश में नयी स्त्रियों से ब्याह कर लें, तो इस दासी को न भूल जाइयेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं आज से एक बार भोजन करूँगी, जमीन पर शयन करूँगी; श्रृंगार त्याग दूँगी और सादगी से रहूँगी। जब सिद्धचक्र के प्रताप से आपके पुनः दर्शन होंगे तब श्रृंगार धारण कर अपने को धन्य समझूँगी।"

इस प्रकार सबसे बिदा ग्रहण कर, श्रीपालकुमार केवल अपनी ढाल तलवार लेकर प्रातःकाल के समय चन्द्र-स्वर और शुभ मुहूर्त में घर से निकल पड़े। अनेक नगरों को देखते, भ्रमण का आनन्द प्राप्त करते हुए कुछ दिनों के बाद वे एक पर्वत के शिखर पर जा पहुँचे। वहाँ सघन वृक्षों की घनी घटामें चम्पक-वृक्ष के नीच एक विद्या-साधक दोनों हाथ ऊपर को उठाये जप कर रहा था। कुमार को देखते ही जप पूरा कर पहले उसने प्रणाम किया। फिर वह कहने लगा :- "हे सत्पुरुष! आप बहुत ही अच्छे अवसर पर यहाँ आ पहुँचे हैं। निःसंदेह आपसे मुझे अपने कार्य में बड़ी सहायता मिलेगी।"

श्रीपाल ने कहा :— "मेरे योग्य जो कार्य–सेवा हो, सहर्ष सूचित करें। परोपकार के लिये अनेक महापुरुषों ने अपना राज्य, धन और प्राण तक दे दिये हैं।"

साधक ने कहा :— "हे कुमार! गुरुदेव ने कृपाकर मुझे एक विद्या प्रदान की थी। मैंने उसे सिद्ध करने के लिये बहुत चेष्टा की; पर वह सिद्ध नहीं होती। इसकी साधना के लिये एक उत्तर-साधक की आवश्यकता है। बिना उत्तर साधक के चित्त स्थिर नहीं होता और बिना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्त की स्थिरता के विद्या का सिद्ध होना भी असम्भव है। अतः मैं चाहता हूँ कि आप मेरे लिये थोड़ा सा कष्ट उठा कर उत्तर-साधक होना स्वीकार करें।"

कुमार ने तुरन्त ही यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वे कहने लगे :— "आप स्थिर चित्त से विद्या-साधन कीजिये जबतक मैं उत्तर-साधक रहूँगा, तब तक किसी की मजाल नहीं कि आपके कार्य में किसी प्रकार की बाधा दे सके।"

अब कुमार की सहायता से वह साधक, विद्या की साधना करने लगा। इस बार बहुत ही अल्प समय में वह विद्या सिद्ध हो गयी। इसके प्रतिफल स्वरूप उस विद्याधर ने श्रीपाल को आग्रह पूर्वक दो औषधियाँ प्रदान कीं। एक का नाम था जल तरणी और दूसरी का नाम था शस्त्रघात-निवारणी यह दोनों चीजें श्रीपाल के लिये आगे चलकर बहुत ही उपयोगी प्रमाणित हुई।

विद्या सिद्धि हो जाने पर विद्याधर और श्रीपाल उस स्थान से चल पड़े। मार्ग में उन्हें एक धातुर्वादी मिला। वह विद्याधर की बतलायी हुई विधि के अनुसार रस सिद्ध कर रहा था। विद्याधर को देखते ही उसने कहा :— "आपकी बतलायी हुई विधि के अनुसार रस सिद्ध करने की बड़ी चेष्टा की; पर रस सिद्ध नहीं होता।" श्रीपाल ने कहा :— "अच्छा, अब एक बार मेरे सामने चेष्टा कीजिये।" तदनुसार श्रीपाल के सम्मुख कार्यारम्भ करने पर तुरन्त ही रस सिद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो गया। इस रस से उस धातुर्वादी ने अपरिमित सोना तैयार किया। उसने कुमार से अनुरोध किया कि :—इसमें से आप जितना सोना ले सकें, सहर्ष ले लें। राज-कुमार ने सोना का भार वहन करना ठीक न समझने से इन्कार कर दिया। फिर भी धातुर्वादी ने थोड़ा सा सोना उनके छोर में बाँध ही दिया। अनन्तर श्रीपाल कुमार वहाँ से बिदा हो आगे चले।

कुछ दिनों के बाद वे घूमते-घूमते भरूच नगर में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने सोना बेचकर सुशोभित वस्त्र और शस्त्रास्त्र मोल लिये। विद्याधर की दी हुई उन दोनों औषधियों को भी उन्होंने सोने के ताबीज में मढ़ाकर अपने हाथ में बाँध लिया। इसके बाद वे आनन्द पूर्वक नगर में घूमने और कौतुक देखने लगे।

दैव-योग से इसी समय एक दूसरी घटना घटित हुई। कौसम्बी नगर में धवल नामक एक धनी-मानी व्यापारी रहता था। अगणित धन राशि का अधिकारी होने के कारण लोग उसे धनकुबेर के नाम से सम्बोधित करते थे। ऊँट और गाड़ियों में किराना लादकर व्यापार करता हुआ वह भरूच शहर में आ पहुंचा। यहाँ उसने सब किराना बेच दिया। इस व्यापार में उसे बहुत लाभ हुआ। अब उसने विचार किया, कि यहाँ से व्यापार की अन्यान्य चीजें खरीद कर जल मार्ग द्वारा कहीं विदेश जाना चाहिये। वहाँ यह चीजें बेचकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनोपार्जन करना चाहिये। निदान, यह विचार स्थिर होते ही उसने पाँच सौ नौकायें मोल लीं। उनमें नाना प्रकार का माल भरकर यात्रा की तैयारी की।

धवल सेठ की पाँच सौ नौकाओं में छोटी बड़ी सभी तरह की नौकायें थी। कई नोकायें तो इतनी बड़ी थीं कि उन्हें जहाज के नाम से सम्बोधित किया जा सकता था। इन नौकाओं को माल भरने के बाद, प्रस्थान करने के पहले राजा की आज्ञा से बन्दरगाह पर लाना पड़ा। इनपर हजारों आदमी काम करते थे। प्रस्थान का समय ज्यों ज्यों समीप आता जाता था, त्यों-त्यों लोगों को बड़ा ही आनन्द हो रहा था। सभी नौकायें सात-सात मंजिल ऊँची थीं। इन नौकाओं पर बड़ी-बड़ी तोपें चढ़ा दी गयीं थीं, ताकि किसी शत्रु या समुद्री डाकुओं से समय पर सामना किया जा सके। इस बेड़े में सब मिलाकर करीब दस हजार सैनिक थे। जिन्हें, नौकाओं की रक्षा के निमित्त नियुक्त किया गया था। यह सैनिक सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित थे। धवल सेठ के बेड़े का यह प्रबन्ध देखकर औरं भी अनेक व्यापारी भाड़ा देकर उसकी नौकाओं पर अपने सामान सहित आ बैठे। सब तरह की तैयारियाँ पूरी हो जाने पर यह दल चलने को तैयार हुआ।

प्रस्थान का निश्चित समय आ पहुँचने पर सबसे बड़ी नौका पर से एक तोप छोड़ी गयी। छोड़ी-बड़ी अन्यायन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नौकाओं ने भी इसका अनुकरण किया । तोपें छूटते ही नाविकों ने लंगर उठाना आरम्भ किया। परन्तु यह क्या? लंगरो का उठाना तो दूर रहा, उन्हें कोई टस-से-मस भी न कर सका। सभी नौकाओं को मानों किसी ने पकड़ रक्खा था। तुरन्त ही यह समाचार धवल सेठ को पहुँचाया गया। इसका कारण उसकी समझ में न आया, इसलिये वह तुरन्त ही नैमित्तिक के पास पहुँचा। उसने बतलाया कि :— समुद्र के अधिष्ठायक देव ने आपकी नौकाओं को रोक रक्खा है। जब तक किसी सर्वगुण-सम्पन्न-अर्थात् बत्तीस लक्षणों से युक्त पुरुष की बलि न चढ़ायी जायगी, तब तक नौकाओं का चलना असम्भव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छठा परिच्छेद

समुद्र-यात्रा

धवल सेठ को जब यह मालूम हुआ कि एक सर्वगुण-सम्पन्न पुरुष की बलि चढ़ाये बिना नौकायें आगे न बढ़ सकेंगी, तब उसे ऐसा पुरुष प्राप्त करने की चिन्ता लगी। राज-नियम के अनुसार यह कार्य बिना राजा की आज्ञा के न हो सकता था, इसलिये कुछ भेटें लेकर धवल सेठ राजा की सेवा में उपस्थित हुआ। राजा ने जब उसके आगमन का कारण पूछा, तब उसने सारी बातें कह सुनायी। राजा ने कहा:—मैं इसके लिये सहर्ष आज्ञा दे सकता हूँ, किन्तु शर्त यह है कि जो मनुष्य पकड़ा जाय वह परदेशी हो और इस नगर में उसका कोई भी रिश्तेदार या कुटम्बी न रहता हो।

राजा की आज्ञा मिलते ही धवल सेठ ने चारों ओर अपने आदमी छोड़ दिये। उन्हें आज्ञा दी, कि जहाँ ऐसा पुरुष मिले वहीं से उसे पकड़ लाया जाय। धवल सेठ के आदमी कई दिन तक समूचे नगर में खोज करते रहे, परन्तु कोई भी सर्वगुण-सम्पन्न परदेशी पुरुष न मिला। अन्त में बड़ी कठिनाई के बाद श्रीपाल पर उन लोगों की निगाह पड़ी। उन्होंने तुरन्त ही धवल सेठ को यह समाचार दिया। धवल सेठ ने आज्ञा दी कि , शीघ्र ही उस पुरुष को गिरफ्तार कर हाजिर करो,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ताकि हम लोग अपना काम पूरा कर यहाँ से प्रस्थान करें। परदेशी होने से यह लाभ होगा कि यहाँ किसी प्रकार का बावेला न मचेगा, न कोई उसकी खोज खबर ही लेगा।

धवल सेठ की यह आज्ञा मिलते ही उसके दस हजार सुभट श्रीपाल को पकड़ने के लिये दौड़ पड़े। उन्होंने श्रीपाल के निकट पहुंचते ही बड़ी उदण्डता-पूर्वक कहा :— "चलो, तुम्हारी जिन्दगी के दिन पूरे हो गये । धन कुबेर धवल सेठ तुम पर रुष्ट हो गया है। हम लोग तुम्हें उसके पास पकड़ ले चलेंगे। वहां तुम्हारा बलिदान होगा। हमारी इन बातों में लेशमात्र भी झूँठ नहीं है।"

धवल सेठ के आदमियों की यह बातें सुन श्रीपाल को स्वाभाविक ही कुछ क्रोध आ गया। उन्होंने कहा :— "मूर्खों! कहीं सिंह का भी बलिदान होते सुना है? तुम्हारा मालिक धवल, बकरे के समान कोई पशु होगा। अतः बलिदान के लिये वही उपयुक्त हो सकेगा।"

जब धवल सेठ ने यह बात सुनी और उसे मालुम हुआ कि श्रीपाल को गिरफ्तार करना सहज काम नहीं है, तब उसने राजा से सब समाचार निवेदन कर उसकी सहायता चाही। राजा ने सहर्ष सहायता देना स्वीकार किया। धवल सेठ की सेना के साथ-साथ राजा की सेना भी श्रीपाल को पकड़ने के लिये अग्रसर हुई।

श्रीपाल को पकड़ना सहज कार्य न था। श्रीपाल ने तुरन्त ही दोनों दलों से युद्ध करना आरम्भ कर दिया। इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घटना से बाजार में चारों ओर हा-हाकार मच गया। एक ओर हजारों सैनिक थे और दूसरी ओर अकेले श्रीपाल थे। श्रीपाल पर शस्त्रास्त्रों द्वारा अनेक वार किये जाते थे, किन्तु "शस्त्र-घात-निवारिणी" औषधिके प्रताप से उनका एक बाल भी बाँका न हो सका। इसके विपरीत, श्रीपाल का एकवार भी खाली न जाता था। वे जिधर ही झपट पड़ते, उधर ही लाशें बिछ जातीं और मैदान साफ नजर आता। कुछ समय तक यही अवस्था रहने पर धवल और राजा के सैन्य में भगदड़ होना आरम्भ हो गयी। जिसे जहाँ रास्ता मिला, वह वहीं भाग चला। अनेक सैनिकों ने दीनता प्रदर्शित की एवं अनेक सैनिकों ने शरण स्वीकार कर प्राण रक्षा की।

धवल सेठ ने जब देखा कि मामला बिगड़ रहा है। बल से काम निकालना असम्भव है, तब उसने युक्ति से काम निकालना स्थिर किया। वह तुरन्त ही श्रीपाल के पास जाकर उनके चरणों में गिर पड़ा। कहने लगा :—"आप मनुष्य नहीं, कोई देवता मालूम होते हैं। हम लोगों ने अज्ञानतावश आपको कष्ट देकर जो अपराध किया है, वह क्षमा कीजिये। हम लोग इस समय बहुत बड़े संकट में पड़ गये हैं। हमारी नौकायें स्तम्भित हो गयी हैं। यदि आप किसी तरह उन्हें चला देने की कृपा करेंगे तो हमलोग आपके चिर ऋणी रहेंगे।"

श्रीपाल ने कहा:—"मैं आपका यह कार्य कर सकता हूँ, किन्तु इसके लिये आप क्या खर्च करने को तैयार है।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपराध किया है, वह क्षमा कीजिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धवल सेठ ने कहा :—"मैं एक लाख स्वर्ण मुद्रायें आपके चरणों पर रख सकता हूँ; किन्तु जैसे हो वैसे इस विपत्ति से छुटकारा मिलना चालिये।"

लक्ष्मी उपार्जन करना ही श्रीपाल का प्रधान उद्देश्य था। इसीलिये वे परदेश आये थे। उन्होंने यह अवसर हाथ से खोना उचित न समझा। धवल सेठ की बात स्वीकार कर वे उसी समय समुद्र-तट पर जा पहुंचे। परिस्थिति का निरीक्षण करने के बाद वे सबसे बड़ी नौका पर गये। वहाँ खड़े हो सिद्ध चक्र का ध्यान कर सिंहनाद किया। सिंहनाद सुनते ही जिस दुष्ट देवी ने नौकायें रोक रक्खी थी, वह भाग खड़ी हुई और नौकायें चलने लगीं। यह देखकर धवल सेठ के आनन्द का पारावार न रहा।

अब धवल सेठ अपने मन में सोचने लगा कि :— यह नर-रत्न किसी तरह साथ ही रहे तो अपनी यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो सकती है। यह सोच कर उसने एक लक्ष स्वर्ण-मुद्रायें कुमार के चरणों में भेटकर कहा :—"हे महापुरुष! मैं चाहता हूँ कि इस यात्रा में आप भी मेरे साथ रहें। मेरे पास दस हजार सैनिक हैं। प्रत्येक को हर साल एक हजार रुपये देता हूँ, किन्तु यदि आप मेरे साथ रहना स्वीकार करें, तो मैं आपको जितना कहें, उतना धन दे सकता हूँ।"

श्रीपाल ने कहा :—"मैं सहर्ष आपके साथ चल सकता हूँ; किन्तु आप अपने दस हजार सैनिकों को जितना वेतन देते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं, उतना अकेले मुझे देना होगा। इसके बदले में मैं वचन देता हूँ कि दस हजार सैनिक जो कार्य करते हैं, वह मैं अकेला करूँगा।"

धवल सेठ पूरा हिसाबी वणिक था। उसने हिसाब लगा कर देखा तो एक करोड़ रुपये हुए। वह कहने लगा :—"इतनी बड़ी रकम अकेले आपको देना मेरे लिये असम्भव है। इसके लिये मुझे साहस ही नहीं होता।"

धवल सेठ की यह मनोवृत्ति देखकर श्रीपाल हँस पड़े। उन्होंने कहा :—"मैंने यह बात आपकी हिम्मत देखने के लिये ही कही थी। यदि आप इतनी रकम देना स्वीकार करें, तब भी मैं एक सेवक की भाँति आपके साथ आने को तैयार नहीं हूँ ; किन्तु मैं विदेशों की यात्रा करना चाहता हूँ। इसलिये आपके साथ यों ही चलने को तैयार हूँ। यदि आप उचित भाड़ा लेकर अपनी किसी नोका पर मुझे स्थान देने की कृपा करें, तो मैं सहर्ष आपके साथ चल सकता हूँ।"

धवल सेठ ने कहा :—"मुझे इसमें किसी तरह की आपत्ति नहीं । दूसरे से तो मैं बहुत भाड़ा लेता; किन्तु आपसे प्रतिमास केवल सौ ही रुपये लूँगा।"

श्रीपाल ने यह भाड़ा स्वीकार कर एक नौका में उपयुक्त स्थान पसन्द कर लिया। यथा समय सब नौकायें चल पड़ी। कुछ दिनों के बाद बब्बरकुल नामक एक बन्दरगाह मिला। इस समय प्रधान नाविकने कहा :—.यहाँ से अन्न और लकड़ियाँ आदि आवश्यक सामग्री संग्रह कर हमें शीघ्र ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगे बढ़ना चाहिये; क्यों कि इस समय वायु बहुत ही अनुकूल है। जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता हो, वह शहर में जाकर शीघ्र ही ले आये।"

प्रधान नाविक की यह बात सुन सब नौकायें वहाँ रोक दी गयीं। लोग आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करने के लिये शहर में गये। धवल सेठ भी नौका से उतर कर, तटपर बड़े ठाठ से गद्दी, तकिया लगाकर आ बैठा। चारों ओर उसके कर्मचारी खड़े हो गये और राजसी ढंग से धवल सेठ की आज्ञाओं का पालन करने लगे।

बब्बरकुल के राज-कर्मचारियों को यह मालुम हुआ कि कोई व्यापारी बन्दरगाह पर आया है। इसलिये वे लोग धवल सेठ के पास पहुँचे। उन्होंने यथा नियम कर की याचना की। धवल सेठ को अपने सैनिकों पर बड़ा अभिमान था। उसने सोचा कि युद्ध भले ही करना पड़े ; किन्तु कर न चुकाया जाय। निदान, कर देने से इन्कार करने पर राजा के आदमियों से झगड़ा हो गया। देखते ही देखते युद्ध का सामान उपस्थित हो गया। उसी समय राजा के आदमियों ने यह समाचार राजा को पहुंचाया। राजा के पास एक सुदृढ़ सैन्य था। वह उसे साथ लेकर तुरन्त ही समुद्र-तटपर आ पहुँचा। चारों ओर से धवल सेठ को घेर लिया। धवल सेठ के सैनिक उसके सामने ठहर न सके। ज्योंही वे इधर-उधर भागने लगे, त्योंही राजा के सैनिकों ने धवल सेठ को गिरफ्तार कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिया। राजा ने आज्ञा दी कि :– "कर के बदले में सब नौकायें जब्त कर ली जाँय और इस बनिये को एक पेड़ में हाथ पैर बाँध कर उलटा टाँग दिया जाय।" तुरन्त ही यह आज्ञा कार्य-रूप में परिणत की गयी। पहरे का समुचित प्रबन्ध कर राजा अपने निवास-स्थान को लौट गया।

श्रीपाल अब तक अपनी नौका में बैठे हुए सारा तमाशा देख रहे थे। जब उन्होंने धवल की यह दुर्गति देखी, तब वे नौका से उतर कर उसके पास आये। उन्होंने पूछा:–"यह क्या? आपके सब वीर सैनिक कहाँ चले गये? यदि आपने मुझे करोड़ रुपये दिये होते तो आज आपकी यह दुर्गति कदापि न होती।"

श्रीपाल की यह बातें सुन धवल सेठ लज्जित हो गया। उसने कहा :—"अब इस समय मुझे विशेष लज्जित न कीजिये। यदि किसी तरह मुझे मुक्त कर सकें तो चेष्टा कीजिये। बड़ी कृपा होगी। मैं आपका यह उपकार कभी न भूलूँगा।"

श्रीपाल ने कहा :–"मैं आपको छुड़ा सकता हूँ ; आपकी सब नौकायें भी वापस दिला सकता हूँ, किन्तु पहले यह बतलाइये, कि मुझे इसके बदले क्या मिलेगा?"

धवल सेठ ने कहा:—"यदि आप मुझे छुड़ा दें और मेरी समस्त सम्पत्ति वापस दिला दें तो आपको अपनी नौकायें और उन पर लदा हुआ माल आधा बाँट दूँगा।"

श्रीपाल कुमार ने यह स्वीकार कर लिये। अब वे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

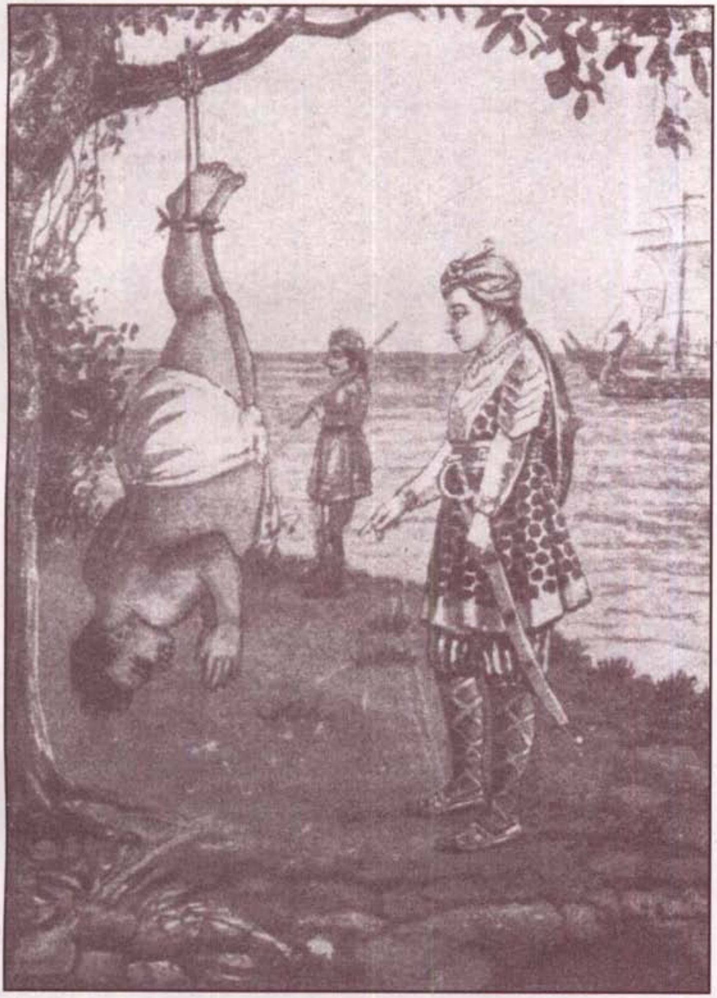

किसी तरह मुझे मुक्त कर सकें तो चेष्टा कीजिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शस्त्रास्त्र से सुसज्जित हो, शहर की ओर रवाना हुए। दैवयोग से राजा महाकाल और उसके सैन्य से रास्ते में ही भेंट हो गयी। श्रीपाल ने राजा के निकट पहुँच कर कहा :—"राजन्! धवल सेठ की सम्पत्ति इतनी आसानी से हाथ नहीं की जा सकती। आइये, पहले मुझसे युद्ध कीजिये फिर देखिये कि कुछ मिलता है या उलटा देना पड़ता है।"

श्रीपाल की यह ललकार सुनते ही महाकाल खड़ा हो गया, किन्तु उसने जब देखा कि श्रीपाल अकेले ही है, तब वह कहने लगाः—"हे युवक! तू अभी नवयुवक है। शरीर भी तेरा सुन्दर है। इस तरह प्राण देने को क्यों तैयार हो रहा है? जा, अपने घर लौट जा।"

श्रीपाल ने कहा :—मैं युद्ध करने आया हूँ युद्ध में बातों का व्यापार कैसा? इस समय तो शस्त्र का ही व्यापार होना चाहिये।

श्रीपाल की यह बात सुन महाकाल को क्रोध आ गया। उसने अपने सैन्य को श्रीपाल पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी। आज्ञा मिलते ही सैनिकों ने चारों ओर से कुमार पर शस्त्रास्त्र की वर्षा आरम्भ कर दी। इससे कुमार की तो कोई हानि न हुई, परन्तु कुमार के प्रत्येक बाण से दो चार सैनिक अवश्य घायल होते थे। कुछ समय तक योंही युद्ध चलता रहा। अन्त में श्रीपाल की मार से महाकाल की सेना के छक्के छूट गये। सैनिक जिधर ही रास्ता मिला, उधर ही भागने लगे। अवसर देख, श्रीपाल ने महाकाल को भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिरफ्तार कर लिया। इसके बाद वे समुद्र-तट पर आये। वहाँ के रक्षकों को भगाकर धवल सेठ को बन्धन मुक्त किया। धवल सेठ ने देखा कि राजा महाकाल बन्दी के रूप में सम्मुख उपस्थित हैं, तब वह उसे खड्ग ले मारने दौड़ा, किन्तु कुमार ने इसे अनुचित बता कर रोक दिया।

यह सब करने के बाद श्रीपाल ने, महाकाल को भी बन्धन-मुक्त कर, अपनी ओर से बहुत सी चीजें भेंट दे, बिदा किया। धवल सेठ के हजारों सैनिक जो युद्ध के समय भाग गये थे, वे फिर आकर इकट्ठे हुए। परन्तु धवल सेठ ने सबों को निकाल दिया। श्रीपाल ने सोचा कि, इन लोगों से किसी समय बहुत काम निकल सकता है, इस लिये उन्होंने उन सबको अपने पास रख लिया और कहा :—"तुम लोग आज से धवल सेठ के बदले मेरे सेवक हुए। आज से तुम्हें मेरी २५० नौकाओं की रक्षा करनी होगी और जो मैं कहूँगा वही करना होगा।"

उधर महाकाल राजा जब युद्ध में पराजित हुआ तो उसके समस्त स्वजन-कुटुम्बी भाग खड़े हुए थे। श्रीपाल ने उन सबको अभय-दान दे, अपने पास बुलाया। यथोचित सत्कार कर उन्हें यथा पूर्व रहने की आज्ञा दी। श्रीपाल का यह व्यवहार देख, महाकाल राजा बहुत ही चकित और प्रसन्न हुआ। उसने श्रीपाल से प्रार्थना की कि:—"एक बार आप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरे नगर और राज-प्रसाद को अपने आगमन से पावन करने की कृपा करें ; क्यों कि जिस तरह मरुभूमि के लोगों को आम्र-वृक्ष के दर्शन दुर्लभ होते हैं, उसी तरह हमलोगों के लिये भी आप जैसे प्रतापी पुरुषों के पवित्र दर्शन दुर्लभ हैं।"

श्रीपाल ने महाकाल की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली; किन्तु इससे धवल सेठ को बहुत ही चिन्ता होने लगी। वह सोचने लगा :— "ऐसा न हो कि कुमार यहीं रह जायँ, तो मैं कहीं का न रहूँ।" क्यों कि श्रीपाल के बिना उसका आगे बढ़ना असम्भव था। उसने श्रीपाल से कहा:— "आप जैसे पुण्यात्मा से सभी लोग प्रेम कर सकते है : किन्तु हमलोगों को रत्नद्वीप जाना है। यदि हमलोग इसी तरह जहाँ-कहीं रहने लगेंगे, तो वहाँ तक पहुँच ही न सकेंगे।"

श्रीपाल ने कहा :— "आपका कहना ठीक है ; किन्तु किसी की प्रार्थना कैसे अस्वीकार की जाय?"

उधर राजा महाकाल ने समूचे नगर को ध्वजा–पताकाओं से खूब सजाया था। स्थान-स्थान पर नृत्य और गायन का आयोजन किया था। यह सब श्रीपाल के ही निमित्त हुआ था। यथा समय श्रीपाल की सवारी निकली। बड़ी धूमके साथ सारे नगर में घूमती हुई महाकाल के राज प्रासाद में पहुँची।

राजा महाकाल ने श्रीपाल के आदर-सत्कार और आतिथ्य में किसी प्रकार की कोर-कसर न रक्खी। इधर उधर की बहुत सी बातें होने के बाद, राजा ने अवसर देख, श्रीपाल से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनी राज-कन्या के पाणि-ग्रहण का प्रस्ताव किया। श्रीपाल ने कहाः—"मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं ; किन्तु आज्ञातकुल व्यक्ति को अपना सम्बन्धी बनाने के पूर्व आपको अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिये।"

राजा ने कहा :— "मैंने इसका विचार अच्छी तरह कर लिया है। हंस छिपा नहीं रह सकता। आपका शील-स्वभाव और आपके गुण ही आपके कुल का परिचय दे रहे हैं। बैडुर्य-रत्न की खान से ही हीरा उत्पन्न हो सकता है।"

श्रीपाल ने राजा महाकाल का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। महाकाल ने तुरन्त अपनी मदनसेना नामक कन्या का श्रीपाल के साथ विवाह कर दिया। इस समय दहेज में राजा ने श्रीपाल को अनेकानेक वस्त्राभूषण, नव प्रकार के उत्तम नाटक और अनेक दास-दासियाँ अर्पण की।

अनन्तर श्रीपाल बहुत दिनों तक अपनी इस नयी ससुराल में मौज करते रहे। अन्त में उन्होंने एक दिन राजा से बिदा मांगी। यह सुनकर राजा को बहुत ही दुःख हुआ, किन्तु लाचार, अतिथियों से किसी का घर आबाद नहीं होता। फिर पुत्री तो पराया धन ठहरी। यह सोचकर उन्होंने श्रीपाल को बिदा करने की तैयारी की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सातवाँ परिच्छेद

रत्नद्वीप की ओर प्रस्थान

राजा महाकाल ने श्रीपाल के लिये एक बहुत बड़ी नौका तैयार करायी। उस नौका में उसने अपरिमित धन-राशि और रत्नादिक रखवा दिये। अपनी पुत्री को और भी नानाप्रकार की चीजें भेंट दीं। चलते समय उसने उसे बहुत सा हितोपदेश दिया। पश्चात् मंगल-बाजों के साथ सब लोग राज-कन्या और श्रीपाल को समुद्रतट तक पहुँचाने गये। प्रेम के कारण वहाँ सबकी आँखों में आँसू आ गये। श्रीपाल और राज-कन्या ने सबसे विदा ग्रहण कर नौका पर स्थान ग्रहण किया। आँसू बहाते हुए लोगों ने उन्हें बिदा किया। नाविकों ने लंगर उठाये। नौकायें वायु-वेग से रत्नद्वीप की ओर चल पड़ीं।

श्रीपाल की नौका में आमोद-प्रमोद के साधनों की कमी न थी। पूरा राजसी ठाठ था। नौकापर नाटक अभिनीत हो रहे थे और श्रीपाल मदनसेना के साथ एक झरोखे से अभिनय देखते हुए चले जा रहे थे। धवल सेठ को यह सब देख-देख कर, नाना प्रकार के विचार उत्पन्न होते थे। वह अपने मन में सोचता था कि यात्रा तो श्रीपाल की ही सफल हुई। मैं तो व्यर्थ ही बेगार कर रहा हूँ। बब्बर कुल में हमलोग सामान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेने उतरे, तो वहाँ मुझ पर आफत आयी; किन्तु श्रीपाल एक राज-कन्या और मेरी आधी सम्पत्ति का अधिकारी हो गयी। मेरा उसके पास कुछ भाड़ा पावना है। क्या करूँ? मांगू या न माँगू? मांगने पर भी वह देगा या नहीं?

श्रीपालकुमार को धवल सेठ के इन संकीर्ण विचारों का जब पता चला, तब उन्होंने धवल सेठको बुलाकर, उसका जितना भाड़ा निकलता था, उससे दस गुनी रकम चुका दी। धवल सेठ को यह देख कर बड़ा ही आश्चर्य हुआ।

कुछ दिनों के बाद सब लोग रत्नद्वीप जा पहुँचे। लंगर डालकर नौकाएँ खड़ी कर दी गयीं। सब लोग नौकाओं से उतर पड़े। कर जकात चुकाकर सब माल गोदामों में रखवा दिया गया। श्रीपाल ने समुद्र के तट पर ही अपना सुनहला तम्बू खड़ा करवाया। उस तम्बूमें वे एक राजा की तरह रहने लगे। नित्य ही नाटक आदि आमोद-प्रमोद होते रहे। इस तरह कुमार के दिन बड़े ही आनन्द से व्यतीत होने लगे।

एक दिन धवल सेठ ने श्रीपाल के पास आकर कहा :- "इस समय हम लोगों की चीजों के दाम बहुत अच्छे मिल रहे हैं। आप अपना माल बेचते क्यों नहीं?" श्रीपालने कहा :- 'यह काम आप ही कीजिये।' धवल सेठ को यह सुनकर बहुत ही आनन्द हुआ ; क्योंकि यह उसी के लाभ की बात थी। श्रीपाल के आदेशानुसार वह अपने माल के साथ-साथ उनके मालकी भी निकासी करने लगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक दिन श्रीपालकुमार आनन्दपूर्वक नाटक देख रहे थे। उसी समय कई अनुचरों के साथ एक सवार वहाँ आ पहुँचा। श्रीपाल ने उन लोगों का सत्कार कर, उन्हें अपने पास बैठाया। नाटक देखकर वे लोग बहुत ही प्रसन्न हुए। श्रीपाल कुमार ने नाटक समाप्त होने पर उनसे पूछा :- आपलोग कहाँ से और किसलिये आये हैं?

सवार ने अपना परिचय देते हुए कहा :– "इस रत्नद्वीप में रत्नसानु नामक एक वलयाकार पर्वत है। उस पर्वत पर रत्नसञ्चया नामक नगरी है। वहाँ कनककेतु नामक विद्याधर राज करता है। उसकी रानी का नाम रत्नमाला है। उसने चार पुत्र और एक कन्या को जन्म दिया है। कन्या का नाम मदनमंजुषा है। वह बहुत ही रूपवती है। पर्वत के शिखर पर राजा के पिता ने एक जिन-मन्दिर निर्मित करवाया है। उसमें स्वर्णमयी श्रीऋषभदेव भगवान की मूर्ति स्थापित है। राजा और राज-कुमारी उनकी बहुत ही भक्ति करते हैं।"

एकदिन राज-कुमारी ने प्रभु की बहुत ही मनोहर आँगी रची। सुवर्ण के पत्र लगाकर बीच-बीच में रत्न सजा दिये। इससे आँगी की शोभा सौगुनी बढ़ गयी। इसी समय राजा कनककेतु मन्दिर में जा पहुँचे। राजकुमारी द्वारा रचित आँगी देखकर उन्हें सीमातीत आनन्द हुआ। वे अपने मन में कहने लगे :— "धन्य है मेरी पुत्री को। यह चौंसठ कलाओं की निधान है। इसके लिये अब ऐसा ही योग्य वर खोजना चाहिये। यदि अनुरूप वर न मिला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो बहुत ही दुःख की बात होगी। मणि और काञ्चन का ही योग होना चाहिये। काँच और काञ्चन नहीं।"

जिस समय राजा के मन में यह विचार आये, उसी समय राज-कुमारी आँगी का कार्य पूर्ण कर बाहर निकल रही थी, किन्तु वह ज्यों ही बाहर निकल रही थी, त्योंही अकस्मात् गर्भ-द्वार के किवाड़ बन्द हो गये। उन्हें खोलने के लिये उसने बड़ी चेष्टा की, लेकिन खुलने की कौन कहे, वे टस-से-मस भी न हुए। यह देखकर राजकुमारी अपने मन में सोचने लगी कि :— "प्रमाद के कारण मुझसे अवश्य कोई बड़ी भारी आशातना हो गयी है। उसी से मुझे यह दण्ड मिला है।" वह कहने लगी :—"हे प्रभो! यदि मुझसे कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा कीजिये। मैं अभी नादान हूँ। बच्चे तो अपराध किया ही करते हैं परन्तु माता-पिता उनकी ओर ध्यान नहीं देते। हे भगवन्! आपने मुझपर इतनी अकृपा क्यों की ?"

राज कुमारी को इस प्रकार दुःखित होते देख, राजा ने कहा :— "पुत्री! इसमें तेरा कोई अपराध नहीं है। सारा अपराध मेरा ही है। मैंने तेरा कौशल्य देखकर मन-ही-मन तेरे लिये पति की चिन्ता की। इसी आशातना के होने से द्वार बन्द हो गये। भगवान वीतराग हैं—राग द्वेष रहित हैं। अतएव वे तो क्रोध कर ही नहीं सकते, किन्तु किसी अधिष्ठायक देव ने मुझे यह दण्ड दिया है। खैर, कुछ भी हो अब मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक यह द्वार न खुलेगे, तब तक यहाँ से न हटूँगा।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार प्रतिज्ञा कर मन्दिर में बैठे-बैठ तीन दिन बीत गये। इन तीन दिनों में राजा और उनके परिवार वालों ने मुँह में एक दाना भी न डाला। तीसरे दिन पिछली रात में आकाश वाणी हुई कि:— "आप लोग चिन्ता न करें। जिस आदमी के देखने से यह द्वार खुलेंगे, वही रत्नमञ्जूषा का पति होगा। मैं भगवान् ऋषभदेव की किंकरी चक्रेश्वरी देवी हूँ। एक मास में वर को लाकर यहाँ उपस्थित करती हूँ।" यह आकाश-वाणी सुनकर राजा और उनके परिजनों को सीमातीत आनन्द हुआ। अनन्तर सब लोगों ने उस समय शान्ति पूर्वक पारणा किया।

हे कुमार ! इस घटना को घटित हुए २९ दिन हो चुके हैं। राज-परिवार बहुत ही उत्कण्ठ पूर्वक उपरोक्त पुरुष के आगमन की राह देख रहा है। मैं जिनदेव सेठ का पुत्र जिनदास हूँ। आपको देखते ही मेरी यह धारणा दृढ़ हो गयी है कि चक्रेश्वरी देवी आपही को यहाँ ले आयी हैं। मेरी यह भी धारणा है कि उस मन्दिर के द्वार पर आपकी दृष्टि पड़ते ही वे खुल जायँगे। कृपा कर आप मेरे साथ चलिये और जिनेश्वर के दर्शन कर अपना जन्म सफल कीजिये।

जिनदास की यह बातें सुन श्रीपाल ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इससे जिनदास को सीमातीत आनन्द हुआ। श्रीपाल अपने चुने हुए अनुचरों के साथ रत्नसानु पर्वत की ओर चलने की तैयारी करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आठवाँ परिच्छेद

मन्दिर के द्वार खुल गये

श्रीपाल ने रत्नसानु की ओर प्रस्थान करते समय धवल से भी अपने साथ चलने का अनुरोध किया। उसने कहा :—"आप जाइये, आपको न कोई काम है, न कोई चिन्ता। आप जिस कार्य को सोचते हैं, वह अनायास ही सिद्ध हो जाता है। हमें तो खाने की भी फुरसत नहीं मिलती। बड़ी कठिनाई से दिन में एक बार खाने का अवकाश मिलता है। ऐसी अवस्था में आपके साथ कैसे चल सकता हूँ।"

श्रीपाल, धवल सेठ के कुटिल स्वाभाव से, भलीभाँति परिचित थे। इसलिये उन्होंने उससे अधिक अनुरोध करना उचित न समझा। अपने कुछ आदमियों को साथ ले, तुरन्त जिनदास के साथ चल दिये। कुछ ही समय में सब लोग ऋषभदेव भगवान के मन्दिर के पास जा पहुँचे। वहाँ पहले से ही लोगों की बड़ी भीड़ थी। जिनदास ने सोचा यदि यह सब लोग एक साथ ही मन्दिर में प्रवेश करेंगे तो पता न लगेगा, कि किसकी दृष्टि पड़ने से मन्दिर के किवाड़ खुले। इसलिये उसने एक-एक मनुष्य को मन्दिर के अन्तर्द्वार तक जाने की आज्ञा दी। इस व्यवस्था के अनुसार वहाँ जितने मनुष्य उपस्थित थे, सभी मन्दिर के उस भीतरी दरवाजे तक हो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होकर लौट आये, किन्तु न तो मन्दिर के किवाड़ ही खुले, न किसी को देव-प्रतिमा के ही दर्शन हुए!

अन्तमें श्रीपाल की बारी आयी। श्रीपाल ने स्नान कर पवित्र वस्त्र धारण किये। पूजन की सामग्री ले, मुखकोश बाँध कर सविनय मन्दिर में प्रवेश किया। अन्तर्द्वार के निकट पहुँचते ही मन्दिर के किवाड़ खुल गये। इस घटना से चारों ओर आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ा। आकाश से देवताओं ने पुष्प-वृष्टि की। उपस्थित जन-समुदाय जय-जयकार करने लगा। तुरन्त ही यह शुभ-समाचार राजा को पहुँचाया गया। राजा ने जब यह सुना कि रत्नमञ्जूषा का पति आ पहुँचा है और उसकी दृष्टि पड़ते ही मन्दिर के किवाड़ खुल गये, तब उसे बहुत ही आनन्द हुआ। वह उसी समय सपरिवार जिनमन्दिर की ओर रवाना हुआ।

जिस समय राजा कनककेतु जिन-मन्दिर में पहुँचा, उस समय श्रीपाल जिन-पूजा कर रहे थे। पहले द्रव्य-पूजा कर फिर भाव-पूजा की। अनन्तर चैत्यवन्दन एवं स्तुति कर जब वह रंग-मण्डप में आये, तब राजा ने परिजनों सहित उन्हें प्रणाम कर उनका स्वागत किया। इसके बाद मन्दिरके किवाड़ खोलने के लिये कृतज्ञता प्रकट कर राजाने श्रीपाल से उनके कुल और वंश आदि का परिचय पूछा; परन्तु कुमार अपने मुँह से क्यों कोई बात कहने लगे? वे मौन ही रहे। उत्तम पुरुष कदापि अपने मुँह से आत्मप्रशंसा नहीं करते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस समय एक आश्चर्य जनक घटना घटित हुई। अचानक आकाश किसी दिव्य प्रकाश से आलोकित हो उठा। सब लोग चकित होकर आकाश की ओर देखने लगे। इसी समय एक विद्या चारण मुनि भूमिपर उतरे। उन्होंने प्रथम मन्दिर में जाकर प्रभु के दर्शन कर स्तुति की। तदनन्तर रंग-मण्डप में, देव-रचित सिंहासन पर बैठकर लोगों को उपदेश देना आरम्भ किया। उन्होंने कहा :—"हे भव्यजीवों! तुम लोग सिद्धचक्र की उपासना करो, जिससे इस और उस जन्म में अनेक प्रकार की सुसम्पत्ति प्राप्त हो सके। दुःख-दुर्भाग्य, व्याधि, उपाधि संकट और उपद्रवों का नाश हो और तुम लोग अनन्त-सुख के भोक्ता हो सको। नवपदके सेवन से श्रीपालने जिसप्रकार सुख-सम्पत्ति प्राप्त की है, उसी प्रकार तुम भी प्राप्त कर सकते हो।"

मुनिराज की यह बातें सुन लोगों ने श्रीपाल का परिचय पूछा। मुनिराज ने विस्तार पूर्वक श्रीपाल का चरित्र कह सुनाया। अन्त में उन्होंने कहा :—"यही श्रीपाल इस समय यहाँ आये हुए हैं। इन्हीं की दृष्टि पड़ने से मन्दिर के यह द्वार खुले हैं।"

इस प्रकार लोगों को श्रीपाल का परिचय दे, मुनिराज आकाश की ओर उड़ गये। लोग बड़ी देर तक उनकी ओर देखते और नमस्कार करते रहे। कुमार श्रीपाल का चरित्र सुनकर राजा को बहुत ही आनन्द हुआ। उसने मन्दिर के बाहर निकलते ही अपने परिजन और नगर-निवासियों के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मुख कुमार को तिलक लगाकर उनसे मदनमञ्जूषा के साथ पाणि-ग्रहण करने की प्रार्थना की। कुमार ने भी सहर्ष स्वीकार कर लिया। चारों ओर इस समाचार से आनन्द व्याप्त हो गया। कुमार अपने निवास स्थान को लौट आये। दोनों ओर ब्याह की तैयारियाँ होने लगीं। शीघ्र ही शुभ मुहूर्त में कुमार ने मदनमञ्जूषा का पाणि-ग्रहण किया। राजा ने कुमार को रहने के लिये एक अच्छा स्थान प्रदान किया। कुमार अपनी दोनों रानियों के साथ वहीं मौज से रहने लगे।

चैत्र मास आनेपर नवपद की आराधना के निमित्त कुमार ने नव आयम्बिल किये। जिन मन्दिर में अट्ठाई महोत्सव किया। चारों ओर अमारीपटह बजवाया और भली-भाँति सिद्ध चक्र की उपासना की।

एक दिन राजा और श्रीपालकुमार जिनमन्दिर में प्रभु-स्तुति कर रहे थे। इसी समय कोतवाल आया। उसने राजा से निवेदन किया, —"महाराज ! हम लोग एक बड़े भारी अपराधी को पकड़ लाये हैं। उसने आपकी अवज्ञा कर, जकात देने से इन्कार किया। माँगने पर वह लड़ने को तैयार हुआ। इसलिये हम लोगों ने भी उसे गिरफ्तार कर लिया है कहिये, उसे क्या दण्ड दिया जाय?"

राजाने कहा :—"कर न देना और चोरी करना एक समान है। अतएव जो सजा चोर को दी जाती है, वही इसे भी देनी चाहिये। इसके लिये प्राण-दण्ड ही उपयुक्त दण्ड है।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा की यह बात सुनकर श्रीपाल का हृदय काँप उठा। उन्होंने कहा :-"राजन्! हम लोग जिन-मन्दिर में बैठे हुए है। यहाँ बैठ के ऐसी बात कैसे कही जा सकती है? बिना अपराधी को देखे, और बिना उसकी बात सुने ऐसा कठोर दण्ड देना ठीक नहीं।"

श्रीपाल की बात की राजा उपेक्षा न कर सके। उन्होंने अपराधी को अपने सम्मुख उपस्थित करने की आज्ञा दी। उसी समय कोतवाल धवल सेठको उनके सम्मुख ले आया। उसे देखते ही श्रीपाल मुस्करा उठे। उन्होंने कहा :-"वाह! आप लोग चोर तो बहुत अच्छा पकड़ लाये। यह तो कोट्याधिपति धनिक हैं। सैकड़ों नौकायें इनके साथ हैं मैं इन्हें अपने पिता के समान मानता हूँ और इन्हीं के साथ मैं यहाँ आया हूँ।"

इतना कह, श्रीपालकुमार ने धवल सेठ के बन्धन छुड़ा कर उसे राजा से क्षमा-प्रार्थना करने को कहा। उसके क्षमा-याचना करने पर राजा ने श्रीपाल से कहा :- "मैं आपकी इच्छा के विपरीत कोई कार्य कैसे कर सकता हूँ। आप जिसकी रक्षा करने को तैयार होंगे, उसका अपराध तो ईश्वर भी क्षमा कर देंगे। वह अजर-अमर हो जायगा।"

कुछ दिनों के बाद एक दिन धवल सेठने श्रीपाल से आकर कहा:- "हम लोग अपने साथ जितना माल लाये थे, वह सब बेच दिया है और यहाँ से नया माल खरीद कर नौकायें भर दी हैं। अब जिस तरह आप हमें यहाँ लाये थे, उसी तरह कृपा कर स्वदेश पहुँचा दीजिये।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धवल सेठकी यह बात सुन श्रीपाल ने राजा से सारा हाल निवेदन कर, बिदा माँगी। राजा को इससे बहुत ही दुःख हुआ, किन्तु उसने सोचा, कि मंगनी की चीज पर मोह रखना व्यर्थ है। परदेशी का प्रेम अन्त में दुखदायी सिद्ध होता है। यह सोचकर वह उन्हें बिदा करने की तैयारी करने लगा। पश्चात् उसने श्रीपाल से कहा :– "कुमार! हम लोगों ने मदनमञ्जूषा को बड़े प्रेम से पाल-पोल कर बड़ा किया है। दुःख किसे कहते हैं, यह वह जानती ही नहीं। इसलिये उसे अपनी छत्र-छाया में जहाँ तक हो सके सुख पहुँचाने की चेष्टा करना। अब अपना यह कन्याधन हम आपके हाथों में रखते हैं। यदि आप अन्यान्य स्त्रियों से ब्याह करें, तब भी किसी प्रकार इसके जी को दुःखित न करें। यही हमारा निवेदन है। यही हमारी प्रार्थना और यही हमारी आन्तरिक इच्छा है।"

तदन्तर राजा-रानी ने मदनमञ्जूषा को उपदेश देते हुए कहा :–"हे पुत्री! पति को ही अपना आराध्य देव समझना। हृदय में क्षमा वृत्ति को स्थान देना। सास, ससुर, जेठ आदि बड़े-बूढ़ों का आदर करना, अभिमान छोड़ कर हमारे कुल की कार्ति बढ़ाना। पति के सोने के बाद सोना। उठने के पहले उठना। सौतों को बहिन समझना। उनकी बात मानना। पति के समस्त परिवार को खिलाने के बाद खाना। दास-दासी और पशुओं की यत्न-पूर्वक रक्षा करना। जिन-पूजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं गुरु-भक्ति पर प्रेम रखना। पतिव्रता के कर्तव्यों का पालन करना। अधिक क्या कहें, जिस तरह दोनों पक्ष का मुख उज्ज्वल हो, वही करना।"

पश्चात् राजा, अनेक दास-दासियों और वस्त्राभूषणों के साथ, श्रीपाल और मदनमञ्जूषा को बिदा करने के लिये समुद्र तटपर उपस्थित हुए। कुमार श्रीपाल ने अपनी दोनों रानियों के साथ नौका पर स्थान ग्रहण किया। नौका चलने को ही थी कि, सबकी आँखों में आँसू भर आये। आँसू टपकाते हुए राजा ने श्रीपाल और मदनमञ्जूषा को बिदा किया। अनन्त सागर के वक्षस्थल पर क्रीड़ा करती हुई नौकायें वहाँ से चल पड़ी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवाँ परिच्छेद

धवल सेठ की नीचता

नौकायें द्रुतवेग से अपना रास्ता तय कर रही थीं। कुमार अपनी सबसे बड़ी नौका में स्वतन्त्रता-पूर्वक सफर कर रहे थे। उनकी ऋद्धि सिद्धि, उनका परिवार, उनके नौकर-चाकर और उनकी शान-शौक़त देखकर धवल सेठको मन-ही-मन भीषण परिताप होने लगा। उसके हृदय में बड़े जोरों से ईर्ष्याग्नि धधक उठी। वह अपने मन में कहने लगा :- "इसने मेरी पाँच सौ नौकाओं में से आधी नौकायें बँटा लीं। खाली हाथ आया था, और इस समय इतनी बड़ी सम्पत्ति का अधिकारी बन बैठा है। देवांगना जैसी दो स्त्रियाँ भी इसे मिल गयीं !

चिन्ता की कोई बात नहीं। अभी घर थोड़े ही पहुँच गया है। मैं भी देखूँगा कि, यह सारी सम्पत्ति लेकर किस प्रकार घर पहुँचता है? यदि मैं इसे समुद्र में ढकेल दूँ, तो इसकी यह सारी सम्पत्ति और दोनों स्त्रियाँ अनायास ही मेरे हाथ में आ सकती हैं। किसकी सामर्थ्य है, जो मेरे इस कार्य में बाधा दे सके?"

इस प्रकार मन में पाप-पूर्ण विचार उत्पन्न होनेपर धवल सेठको अधिकाधिक सन्ताप होने लगा। अब तक वह केवल ईर्ष्याग्निसे ही जल रहा था, किन्तु अब कुमार की रूपवती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रियों को अपनाने का विचार चित्त में आने से वह कामाग्नि से भी जलने लगा। न उसे दिन में चैन पड़ती थी, न रात में नींद आती थी। सदा वह ठण्डी आहें भरा करता था और मन की बात कार्यरूप में परिणत न करने के कारण दिन-व-दिन दुर्बल होता जाता था।

धवल सेठ की नौकाओं पर जितने मनुष्य थे, उनमें उसके चार मित्र थे। उनके साथ धवल सेठ की घनिष्ठता थी। वे चारों धवल सेठसे पूरी मित्रता रखते थे। धवल सेठ को दिन-प्रतिदिन दुर्बल होते देखकर उन्होंने एक दिन पूछा :- "आप इस प्रकार दुर्बल क्यों हो रहे हैं? क्या आपको कोई रोग हुआ है या कोई चिन्ता लगी है? जो हाल हो, हमसे कहिये। हम उसका उपचार करें।"

धवल सेठ ने अब कोई बात छिपाना उचित न समझा। चारों मित्रों से उसका दिल भी खूब मिला हुआ था। अतएव उसने लज्जा छोड़कर मनकी सब बातें उन लोगों को कह सुनायी। धवल की बातें सुन, चारों को बहुत ही आश्चर्य हुआ। वे कहने लगे:— "ऐसे पाप-विचारों को हृदय में स्थान देना भी उचित नहीं। कुमार जैसे सज्जन पुरुष का नाश कैसे किया जा सकता है? पर-स्त्री का तो विचार भी चित्त में न आने देना चाहिये, इसलिये इन विचारों को सदा के लिये हृदय से निकाल दीजिये। कुमार थे तो आज आप जीवित हैं। कुमार न होते तो आज आपकी न जाने क्या अवस्था हुई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होती? आपको तो आजन्म इनके ऋणी रहना चाहिये। उनका हित-चिन्तन करना चाहिये। सौभाग्यवश उन्हें धन और स्त्रियों की प्राप्ति हुई है। इसमें आपके लिये सन्ताप का कौन-सा विषय है? आपको तो इसके लिये प्रसन्न ही होना चाहिये। यदि आप हमारी बात न मान कर कुमार का अनिष्ट चिन्तन करेंगे, तो यह अच्छी तरह स्मरण रखिये, कि आपको लेने के देने पड़ जायेंगे।"

धवल सेठ को यह उपदेश दे, चार में से तीन तो अपने-अपने स्थान को चले गये; किन्तु एक मित्र वहीं बैठा रहा। वह कुछ नीच प्रकृति का मनुष्य था। सबके सामने तो उसने सबकी हाँ-में-हाँ मिला दी थी; किन्तु एकान्त मिलते ही धवल सेठ को उलटा पाठ पढ़ाने लगा। उसने कहा :—"इन तीनों की बातें ध्यान देने योग्य नहीं हैं। बिना पाप किये धन की प्राप्ति नहीं होती। पहले पापसे धन प्राप्त करना चाहिये। फिर धन से पाप-मुक्त हो सकता है। इसलिये मेरी तो यही सलाह है कि जैसे हो वैसे आपको अपना काम पूरा करना चाहिये। इसका सबसे बढ़िया उपाय यह है कि कुमार को मीठी-मीठी बातों से फँसाइये। उससे घनिष्टता बढ़ाइयें। जब वह बातों में आ जाये, तब मौका देखकर उसका काम तमाम कर दीजिये। मेरी तो दृढ़ धारणा है कि इसमें आपको अवश्य सफलता प्राप्त होगी और आज जो कुमार का है, वह किसी-न-किसी दिन आपका हो जायगा।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'विनाश-काले विपरीत बुद्धि' इस कहावत के अनुसार धवल सेठ को यह बातें पसन्द आ गयीं। उसकी मति पलट गयी। वह नाना प्रकार से कुमार के साथ घनिष्टता बढ़ाने की चेष्टा करने लगा। कुमार से मीठी-मीठी बातें करना, अधिक समय तक उनके पास बैठे रहना और उनकी खुशामद करते रहना ही अब धवल सेठ का नित्य-कर्तव्य हो पड़ा।

एक दिन धवल सेठ ने मौका देख, जहाज के बाहर लटकते हुए एक मचान पर चढ़कर आश्चर्य-पूर्वक कहाः- "कुमार! देखिये, देखिये। यह कितने आश्चर्य की बात है, कि एक मगर के आठ मुँह हैं! जो कभी कानों नहीं सुनी, वही आज आँखों देख रहा हूँ। देखना हो तो शीघ्र ही आइये, वर्ना फिर कहेंगे कि मुझे क्यों न बतलाया?"

कौतूहलवश कुमार तुरन्त ही वहाँ जा पहुँचे, किन्तु मचान बहुत ही छोटा था। उस पर एक साथ दो आदमी बैठे या खड़े नहीं हो सकते थे; इसलिये धवल सेठ उस पर से उतर पड़ा। मचान खाली पाते ही कुमार उसपर चढ़ गये। इस ओर धवल सेठ और उसका कपटी मित्र दोनों तैयार खड़े थे। ज्योंही कुमार ने मचान पर पैर रक्खा, त्योंही उन दोनों ने दोनों ओर से मचान की रस्सियाँ काट दीं। कुमार श्रीपाल उसी समय अथाह सागर में जा पड़े!

समुद्र में गिरते ही कुमार ने नवपद का ध्यान किया। उत्तम पुरुष आपत्ति-काल में अपने इष्ट देवको ही स्मरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

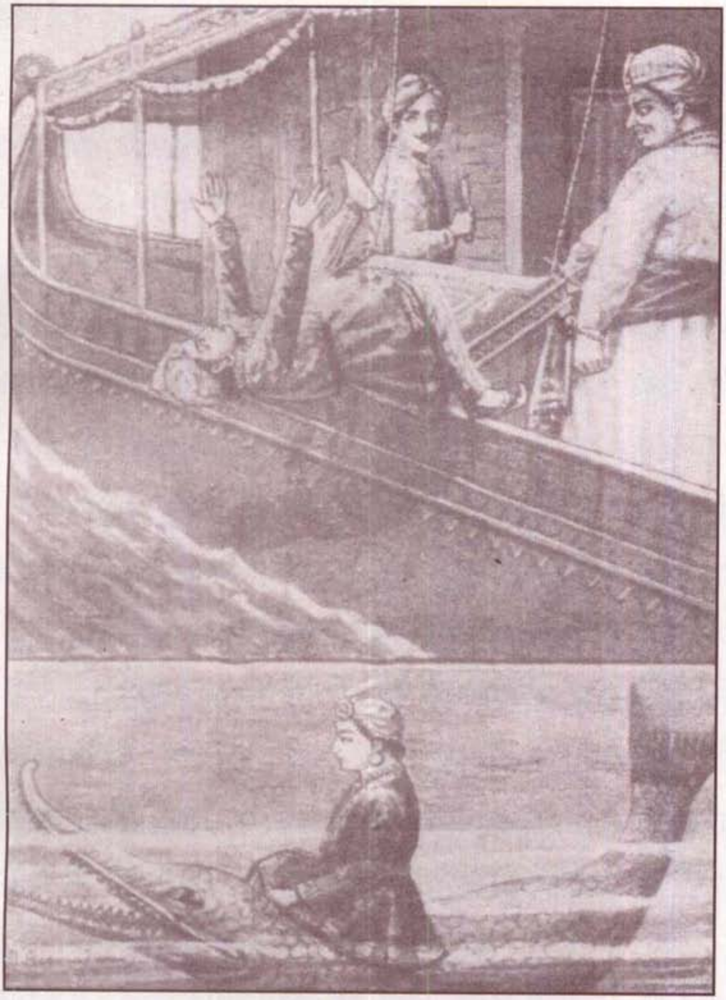

दोनों ओरसे मचानकी रस्सियाँ काट दीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हैं। नवपद का स्मरण करते ही एक मगर ने श्रीपाल को अपनी पीठ पर चढ़ा कर समुद्र-तट पर पहुँचा दिया। हाथ में बँधी हुई 'जल-तरणी जड़ी' और सिद्धचक्र के प्रताप से कुमार को कुछ भी तकलीफ न हुई।

मगर ने कुमार को जिस तट पर उतारा था, वह कोकण देश का किनारा था। समुद्र-तटसे कुछ ही दूर चलने पर कुमार को एक जंगल मिला। थकावट के कारण श्रीपाल कुमार एक चम्पक वृक्ष के नीचे लेट गये। लेटते ही उन्हें निद्रा आ गयी। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से इस समय उनका कोई रक्षक न था, तथापि जिस धर्म ने समुद्र में उनकी रक्षा की थी, वही धर्म इस समय भी उनकी रक्षा कर रहा था।

पुण्यात्मा को यदि दुःख मिलता है, तो वह भी उसके लिये सुख का कारण हो पड़ता है। प्रायः उसको कष्ट होता ही नहीं। दावानल उसके लिये मेघ-राशि हो जाता है। भीषण सर्प सुशोभित पुष्प-माला बन जाता है। जल में स्थल, जंगल में-मंगल और विषका अमृत हो जाता है। पुण्य-प्रताप ही ऐसा है। इसके प्रताप से दुर्जनों के भीषण षड्यन्त्र भी बेकार हो जाते हैं और जो कार्य कष्ट पहुँचाने के उद्देश्य से किये जाते हैं, वही मंगल जनक सिद्ध होते हैं।

कुछ समय तक सोने के बाद, जब कुमार की नींद खुली तो उन्होंने देखा कि घुड़सवारों की एक बहुत बड़ी संख्या उनके चारों ओर बड़े कायदेसे खड़ी है और सब लोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेवक की भाँति उनकी आज्ञा की राह देख रहे हैं। तुरन्त ही उन सवारों का सरदार कुमार की ओर अग्रसर हुआ! उनके समीप पहुँच, उसने कुमार को बतलाया कि इस देश का नाम कोकण है। ठाणापुरी नामक नगरी में इसकी राजधानी है। यहाँ के राजा का नाम वसुपाल है। वह बहुत ही प्रजावत्सल हैं। अभी कुछ ही दिन की बात है कि एक दिन राजा अपनी राज-सभा में बैठे हुए थे। अचानक एक नैमित्तिक वहाँ आ पहुँचा। राजा ने उसकी समुचित अभ्यर्थना करने के बाद उसे कहा :—"यदि आप निमित्त शास्त्र के ज्ञाता हैं तो बतलाइये कि, मेरी मदनमञ्जरी नामक कन्या का पति कौन होगा? वह कहाँ मिलेगा? हम लोग उसे कैसे पहचान सकेंगे? और किस मास की किस तिथि को उससे हमारी भेंट होगी?"

नैमित्तिक ने कहा:— "हे राजन्! हमारा निमित्तशास्त्र ध्रुव की भाँति अटल है। सुनिये, वैशाख शुक्ला दशमी के दिन ढ़ाई प्रहर दिन चढ़ने पर समुद्र के तटपर यदि आप खोज करेंगे तो कन्या के पति से आपकी अवश्य भेंट हो जायगी। वह एक जंगल में चंपक वृक्ष के नीचे सोता हुआ मिलेगा। उसे आराम पहुंचाने के लिये उस वृक्ष की छाया स्थिर हो जायगी।"

नैमित्तिक की इस बात पर राजा को विश्वास न हुआ। वे कहने लगे कि :— "यह केवली थोड़े ही है, जो इस प्रकार सब बातें बतलाता है? इस प्रकार संशयशील होने पर भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नैमित्तिक की बात में कहाँ तक सत्यता है, यह जानने के लिये उन्होंने हम लोगों को यहाँ भेजा हैं। हम देखते हैं कि, नैमित्तिक ने एक भी बात झूँठ न कही थी। अब आपसे हमारी यही प्रार्थना है कि कृपया आप हमारे साथ चलिये और राजकुमारी का पाणि-ग्रहण कर राजा की चिन्ता दूर कीजिये।

यह सब बातें श्रीपाल से निवेदन कर सरदार ने एक तेज घोड़ा मँगवाया। श्रीपाल से उसपर बैठ अपने साथ चलने की प्रार्थना की। श्रीपाल को इसमें कोई आपत्ति दिखाई न दी। वे तुरन्त अश्वारूढ़ हो, उन लोगों के साथ चल पड़े। वास्तव में कर्म की गति बड़ी विचित्र है। कल जो श्रीपाल समुद्र में पड़े हुए, जीवन-मरण की समस्या हल कर रहे थे, वही आज राजा के अनुचरों द्वारा सम्मानित होकर उसके अतिथि बनने जा रहे हैं।

राजा ने ज्योंही यह समाचार सुना, त्योंही वह भी अपने परिजनों को साथ ले, श्रीपाल का स्वागत करने के लिये सम्मुख आया। रास्ते ही में दोनों की भेंट हो गयी। राजा उन्हें आदरपूर्वक अपने नगर में ले आये। नगर-निवासी भी श्रीपाल को देखने के लिये उत्सुक हो रहे थे। नगर में उनकी सवारी निकलते ही चारों ओर दर्शकों का समुद्र उमड़ पड़ा। जिसकी दृष्टि श्रीपाल पर पड़ी वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनके रूप-लावण्य और गाम्भीर्य की प्रशंसा करने लगता। राजा ने बड़े ही सम्मान-पूर्वक श्रीपाल के रहने के लिये एक सुन्दर महल की व्यवस्था कर दी।

पाठकों को स्मरण होगा कि एक नैमित्तिकने राजा के पहले ही यह सब बातें बता दी थीं। राजा ने तुरन्त ही उस नैमित्तिक को बुला भेजा और उससे राज-कुमारी के विवाह का मुहूर्त पूछा। नैमित्तिक ने कहा :—"आज के दिन से बढ़कर कोई उत्तम मुहूर्त नहीं।" यह सुनकर राजा ने तुरन्त तैयारियाँ करायीं। उसी दिन श्रीपाल के साथ मदनमञ्जरी का ब्याह करा दिया। राजा ने दहेज में श्रीपाल को अनेक हाथी, घोड़े और वस्त्राभूषण आदि प्रदान किये।

कर्म-भोग के कारण केवल एक रात्रि दुःख भोगने के बाद दूसरे दिन श्रीपाल नाना प्रकार की सुख-सम्पत्ति के अधिकारी हुए और राजा के दिये हुए निवास-स्थान में रहकर सुख-भोग करने लगे।

राजा ने श्रीपाल से अनेक बार कहा, कि:—"आपको राज्य में जो पद पसन्द हो, उस पर आपकी नियुक्ति कर दी जाय।" किन्तु श्रीपाल ने राजा के बार-बार कहने पर भी कोई पद लेना स्वीकार न किया। अन्त में राजा ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जब बहुत ही अनुरोध किया तब श्रीपाल ने 'थगीधर' का पद स्वीकार करने की इच्छा प्रकट की। राजा के प्रिय-पात्र और गुणीजनों को पान देकर उन्हें सम्मानित करना, 'थगीधर' का कर्तव्य है। यह पद बहुत ही ऊँचा और माननीय कहलाता है। राजा ने तुरन्त ही इस पद पर श्रीपाल की नियुक्ति कर दी। अब श्रीपाल ससुराल में रहकर अपनी नव-विवाहिता स्त्री के साथ आनन्द अनुभव करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसवाँ परिच्छेद

चक्रेश्वरी–देवी का आविर्भाव

इधर श्रीपाल ससुराल में सुखोपभोग कर रहे थे, उधर समुद्र में धवल सेठ मारें आनन्द के फूला न समाता था। नाम धवल सेठ होने पर भी उसका हृदय बहुत ही कलुषित था। श्रीपाल को समुद्र में ढकेल देनेपर उसे अत्यधिक आनन्द हुआ। उसे कभी इस तरह की कल्पना भी न थी, कि यह कार्य इतनी आसानी से सिद्ध हो जायेगी। श्रीपाल की समस्त सम्पत्ति और उनकी दो रानियों का, अपने आपको अधिकारी समझ, वह मन-ही-मन आनन्द मनाने लगा। वह कहने लगाः— "इस संसार में मुझसे बढ़कर कोई भाग्यशाली नहीं। दैव ही मुझपर प्रसन्न मालूम होता है। खैर, अब इन दोनों सुन्दरियों को वश करना चाहिये। बिना राजी किये बलात् प्रेम न हो सकेगा। यदि बलात् सम्बन्ध किया जायेगा, तो आनन्द भी मिलना असम्भव है। उन्हें वश करने के लिये पहले उनके प्रति कृत्रिम सहानुभूति प्रकट करनी होगी। उनके दुःख से दुःखी होने का ढोंग करना होगा। पश्चात् मीठी-मीठी बातें बनाकर उन्हें अपने हाथ में कर सकेंगे।"

इस समय धवल सेठ का हृदय मारे खुशी के नाच रहा था। फिर भी रानियों को दिखलाने के लिये वह फूट-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फूट कर रोने लगा। कभी वह पछाड़ खाकर गिरता, कभी माथा पटकता और कभी छाती कूट-कूट कर बड़े वेग से रोने लगता। अचानक उसकी यह अवस्था देख कर सब लोग चारों ओर से दौड़ आये। उससे इस तरह रोने का कारण पूछने लगे। धवल सेठ ने बिलख कर कहा:— "क्या कहूँ, कहते कलेजा फटा जाता है। हाय! हम लोगों का सर्वनाश हो गया । कुमार श्रीपाल मगरमच्छ देखने के लिये इस मंच पर चढ़े थे; किन्तु इसकी रस्सियाँ टूट जाने के कारण वे समुद्र में जा पड़े। हा दैव! तूने यह क्या किया? हा कुमार ! हम लोगों को इस तरह मझधार में छोड़कर कहां चले गये!"

धवल सेठ की यह भयंकर बात सुनते ही कुमार की दोनों रानियाँ मूर्छित होकर गिर पड़ीं। उनकी सखी-सहचरी और दासियाँ भी घबड़ा गयीं। उन्होंने दोनों को होश में लाने की बड़ी चेष्टा की। नाना प्रकार के उपचार करने पर कुछ समय में दोनों को होश हुआ। होश में आते ही दोनों रानियाँ बड़े ही करुण स्वर से विलाप करने लगीं। उस समय जो अवस्था थी, वह वर्णन नहीं की जा सकती। उनका हृदय मारे दुःख के फटा जाता था। अभी उन दोनों के पाँव का महावर भी न छूटा था, अभी उनके ब्याह की चूनरी भी मैली न हुई थी। ऐसी अवस्था में उनके लिये यह दुःख असह्य हो पड़ना स्वाभाविक था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस समय दोनों रानियाँ विलाप कर रही थीं, उस समय धवल सेठ भी उनके पास जा पहुँचा और उन्हें दिखाने के लिये फूट-फूटकर रोने लगा। कुछ देर तक रोने के बाद उसने गम्भीरता धारण कर रोती हुई रानियों को दिलासा देने का ढोंग करते हुए कहा:—"सुन्दरी ! इस प्रकार रोने-कलपने में अब कोई सार नहीं है। संसार में जो मनुष्य जन्म लेते हैं, वे एक न एक दिन मरते ही हैं। कुमार तो जहाँ रहेंगे वहाँ मणि, माणिक और मुक्ताफल की भाँति शिरमौर होकर ही रहेंगे। हमें भी अब शोक करना छोड़, अपने शेष जीवन को सुखी बनाने की चेष्टा करनी चाहिये। जहाँ हम लोगों की कोई गति नहीं है, हम लोग जिस बात के लिये इच्छा करने पर भी कुछ नहीं कर सकते ; उस बात के लिये, हमको अब शोक करना उचित नहीं।"

धवल सेठ की सन्देह-जनक बातों को श्रवण कर दोनों रानियों को उसपर शंका हो गयी। वे अपने मन में कहने लगीं—"हो न हो, इसी पापी ने यह काम किया है। धन और स्त्रियों के प्रलोभन में पड़कर इसीने हमारे स्वामी को समुद्र में ढकेल दिया है। इस समय तो यह मीठी-मीठी बातें बना रहा है, किन्तु इसकी बातें कपट से भरी हुई हैं। किसी दिन अवसर मिलते ही हम लोगों का सतीत्व नष्ट करने की चेष्टा यह अवश्य करेगा। दैव ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

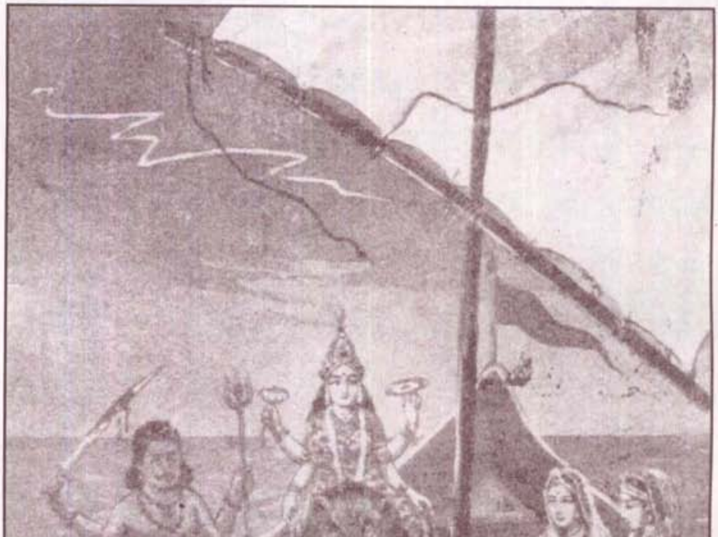

उस चौथे मित्र को मार डाला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमें निराधार बना दिया है! इसके पाशविक-बलके सामने हम लोग कैसे ठहर सकेंगी? उत्तम तो यही होगा, कि हम भी समुद्र में गिरकर अपना प्राण दे दें, ताकि एक साथ ही इन सब झंझटों का अन्त आ जाय!"

जिस समय दोनों रानियाँ यह बातें सोच रहीं थीं, उसी समय बड़े जोरों का तूफान उठा। समुद्र में बड़ी-बड़ी तरंगे-हिलोरें उठने लगीं। आकाश बादलों से घर गया। चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखलाई देने लगा। बादलों की गरजना और बिजली का चमकना बहुत ही भयावना मालूम होता था । इसी समय वायु के कई झोंके इतने जोर के आये कि नौकाओं के पाल की रस्सियाँ टूट गयीं। सब लोगों के हृदय काँप उठे। कई लोग अनेक तरह के संकल्प विकल्प करते थे। सबको अपने-अपने प्राण की पड़ी थी। सब कोई मन-ही-मन ईश्वर का स्मरण कर रहे थे। इसी समय डमरू बजाते हुए, हाथ में खड्ग लिये, एक क्षेत्रपाल प्रकट हुए, उनके पीछे बावन वीरों की सेना के साथ, हाथ में चक्र घुमाती हुई, सिंह-वाहिनी चक्रेश्वरी देवी ने पदार्पण किया। उन्होंने आते ही धवल सेठ को बुरी सलाह देनेवाले, उस चौथे मित्र को मार डाला। अनन्तर क्षेत्रपाल ने उसके शरीर को खंड-खंड कर समुद्र में फेंक दिया। अपने मित्र की यह गति देख कर धवल के देवता कूच कर गये। उसका दुर्बल हृदय

भय के कारण काँप उठा। उसी समय उसने दोनों रानियों की शरण ली। यह देख, चक्रेश्वरी ने कहा :– 'हे पापात्मा! सतियों की शरण लेने के कारण आज तो मैं तुझे छोड़ देती हूँ, किन्तु यह अच्छी तरह स्मरण रखना, कि अब कभी अन्याय का विचार भी मन में लाया, तो तुझे जिन्दा न छोडूंगी।"

धवल सेठ को इस प्रकार शिक्षा दे, देवी ने दोनों रानियों को अपने पास बुलाकर कहा:— "तुम लोग जरा भी चिन्ता न करो। तुम्हारे पति कुशल हैं। वे अपनी नयी ससुराल में मौज कर रहे हैं। आज के तीसवें दिन तुम्हें वे अवश्य मिलेंगे। लो, मैं तुम दोनों को एक-एक पुष्प-माला देती हूँ यत्न-पूर्वक रखना। ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा, त्यों-त्यों इनकी सुगन्ध बढ़ती जायगी। इन मालाओं की विशेषता यह है, कि इनके प्रताप से तुम्हारे सतीत्व की रक्षा होगी। गले में इन मालाओं को पहने रहना, फिर यदि तुम्हें कोई कुदृष्टि से देखेगा तो वह कुछ दिनों के लिये अन्धा हो जायेगा।"

इतना कह, चक्रेश्वरी देवी सदल-बल अन्तर्धान हो गयी। साथ ही सब तूफान भी शान्त हो गया। समुद्र फिर अपनी पूर्वावस्था में आ गया और सब नौकायें यथानियम अग्रसर होने लगीं।

यह सब हाल देख कर, धवलसेठ के वे तीनों मित्र उसके पास पहुँचे। उन्होंने कहा:—"सेठजी! हमारी बात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org .

न मानने का क्या फल हुआ, सो तुमने देख लिया। तुम्हारा एक संगी जान से मारा गया। तुम्हें भी बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। खैर, अब भी कुछ बिगड़ा नहीं। सुबह का भूला शाम को घर आ जाय, तो वह भूला नहीं कहाता। अब कभी भूल कर भी पर-धन या पर-स्त्री की इच्छा न करना । अपने मन में किसी बुरे विचार को स्थान न देना। यदि अब भी हमारी बात न मानोगे तो फिर पछताओगे।"

पापी धवल सेठ पर मित्रों के इस उपदेश का कोई प्रभाव न पड़ा। उसके विचार ज्योंकि त्यों मैले बने रहे। वह अपने मन में कहने लगाः— "जब इतना बड़ा संकट दूर हो गया तो अब चिन्ता करने की कोई बात नहीं।" यह सोचकर कुछ ही दिनों के बाद उसने श्रीपाल की रानियों के पास एक दूती भेज कर कहलाया कि तुम्हारा दासानुदास धवल सेठ तुम्हारे प्रेम की भिक्षा माँग रहा है। यह सुनते ही रानियों ने उसी समय दूती को गर्दन पकड़ निकाल बाहर किया; किन्तु इससे भी कामान्ध धवल सेठ को चेत न हुआ। एक दिन वह स्वयं स्त्री का वेश धारण कर धृष्टता-पूर्वक उन रानियों के पास जा पहुँचा। ज्योंही उसने अपनी पाप-दृष्टि उन सतियों पर डाली, त्योंही उसकी आँखे मानों झुलस गयीं। दासियों ने उसकी दिल्लगी उड़ा कर उसी समय निकाल बाहर किया। तदनन्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्रेश्वरी देवी के कथनानुसार धवल सेठ को कई दिनों तक कुछ भी न दिखाई दिया।

किन्तु धवल सेठ ने इस घटना से भी कोई शिक्षा ग्रहण न की। वह अपने मन में कहने लगा :— "किसी न-किसी दिन तो यह मेरी बात मानने के लिये अवश्य ही बाध्य होंगी।" खैर, इस समय उनका विचार छोड़, अब वह यह सोचने लगा कि श्रीपाल जिस समय समुद्र में गिरे थे, उस समय दक्षिण ओर की हवा चल रही थी, इसलिये वह यदि जीते बचे होंगे, तो दक्षिण की ओर गये होंगे। अतः उस तरफ न जाकर उत्तर की ओर चलना चाहिये। यह सोच कर उसने अपने नाविकों को उत्तर की ओर चलने की आज्ञा दी; किन्तु हवा ऐसी उल्टी चल रही थी, कि हजार माथा मारने पर भी नोकायें उस ओर को चलायी न जा सकीं। अन्त में लाचार हो, उन्हें दक्षिण की ही ओर अग्रसर होना पड़ा। कुछ ही दिनों में वे लोग कोकण देश के तटपर आ पहुँचे। धवल सेठ ने उस प्रदेश के एक विशाल घाट पर अपनी नौकायें खड़ी करवा दीं। अनन्तर वह प्रथानुसार भेंट की सामग्री ले, राजा की सेवा में उपस्थित हुआ।

बहुमूल्य वस्तुओं के साथ धवल सेठ को उपस्थित देख, राजा ने उसका बहुत ही सत्कार किया और उसे अपनी दाहिनी ओर एक बहुत ही उत्तम आसन पर बैठाया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बैठते ही धवल सेठ को दृष्टि थगीधर के आसन पर बैठे हुए श्रीपाल कुमार पर जा पड़ी। उन्हें देखते ही वह मानों सूख गया। काटो तो लहू नहीं—ऐसी हालत हो गयी। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से उल्लू की आँखें बन्द हो जाती हैं, उसी प्रकार श्रीपाल को देखकर धवल सेठ की आखें बन्द हो गयीं। उसका पापी हृदय टूक-टूक हुआ जाता था, किन्तु क्या करें, इस समय कोई उपाय न था। राजा ने श्रीपाल के हाथ से उसे पान दिलाये। इस समय उन्हें देखकर धवल सेठ ने अच्छी तरह इतमिनान कर लिया, कि उसकी आँखें उसे धोखा तो नहीं दे रही हैं? श्रीपालने भी धवल सेठको तुरन्त ही पहचान लिया, किन्तु वे बड़े ही गम्भीर थे। उनके चेहरे पर रञ्चमात्र भी किसी नवीन भाव की झलक न दिखाई दी।

श्रीपाल को देखकर धवल सेठ को बड़ा ही अफसोस हुआ। वह मन-ही-मन कहने लगा:-"अहो, जिसे मैंने अपनी राहका काँटा समझा, समूल नष्ट कर दिया था, फिर भी वह अभी ज्यों का त्यों बना हुआ है। अब तो बिना इसका सर्वनाश किये, मैं हरगिज सुखी नहीं हो सकता।" जिस समय धवल सेठ इस तरह की बातें सोच रहा था, उसी समय राजाने सभा विसर्जित कर दी। धवल सेठ भी सभा भवन से बाहर निकल आया।

बाहर निकलते ही उसने एक द्वार-पालसे श्रीपाल का परिचय पूछा। द्वार-पाल ने कहा:—"महाराज! इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरुष का इतिहास बड़ा ही विचित्र है। यह न जाने कहाँ से आ पहुँचा। समुद्र के तट पर एक दिन सो रहा था। वहाँ से लाकर राजा ने इसके साथ अपनी कन्या का विवाह कर, इसे 'थगीधर' बना दिया। न जात पूछी न पाँत। बड़े आदमियों का मामला है, वर्ना न जाने क्या हो जाता ।"

द्वार-पाल की यह बात सुन, धवल सेठ को बड़ा ही आनन्द हुआ। वह अपने मन में सोचने लगा:— "श्रीपाल को नीच जाति का प्रमाणित कर उसे नीचा दिखाना चाहिये। यदि मुझे अपने इस कार्य में सफलता मिल गयी, तो निःसन्देह राजा क्रुद्ध हो, श्रीपाल को प्राण-दण्ड की आज्ञा दे देगा और मेरी राह का यह काँटा दूर हो जायगा। यद्यपि अब तक मैंने जितने उपाय किये, वे सभी व्यर्थ प्रमाणित हुए। फिर भी निराश होने का कोई कारण नहीं। उद्योग करने पर सभी कार्य सफल होते हैं। उद्योग ही सब सुखों का मूल है। श्रीपाल मेरा परम शत्रु है। इसे बढ़ने का अवसर कदापि न देना चाहिये। जैसे हो वैसे, इसका सर्वनाश ही करना उचित है!"

इस तरह सोच-विचार करता हुआ धवल सेठ अपनी नौकाओं की ओर लौट चला। वहाँ पहुँचते ही कुछ भाँड लोग गाते-बजाते उसके पास जा पहुँचे। उन्हें देखते ही धवल सेठ को एक नयी बात की कल्पना आयी। इसी समय उसने उनके अगुआको अपने पास बुलाकर कहा:— "तुम हमारा एक काम करोगे? यदि कर सको तो मैं तुम्हें मालामाल करने के लिये तैयार हूँ।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाँडने कहा :— "हम लोग रुपयों के ही लिये तो नाचते-गाते और दर-दर मारे फिरते हैं। रुपया मिले तो संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं, जो हम न कर सकें।"

धवल सेठ ने कहाः—"अच्छा, सुनो। इस राजा के दरबार में जो धगीधर है, उसे तुम लोग अपना जाति-बन्धु और नाते-रिश्तेदार बताकर उसके गले से लिपट जाओ। यह काम इतनी सफाई के साथ करना होगा, जिसमें देखने वालों के मन में दृढ़ धारणा हो जाय, कि वह तुम्हारा ही जाति बन्धु है। यदि यह काम तुम अच्छी तरह कर सको तो मैं तुम्हें एक लाख रुपये नकद दूँगा।"

भाँडने कहाः—"बस, अब आपको अधिक न कहना होगा, हम ऐसा हुनर दिखावेंगे, कि किसी को जरा भी सन्देह न होने पायेगा। जब हम आपका यह काम पूरा कर दें, तब हमें हमारी मेंहनत के रुपये और इनाम दोनों दीजियेगा।"

इस प्रकार धवल सेठ से सब बातें तय हो जानेपर, भाँडोंका यह दल राज-सभा में पहुँचा। वहाँ बड़ी देर तक नाच-गान और हँसी-दिल्लगी द्वारा राजा का मनोरञ्जन करते रहे। अन्त में राजा ने प्रसन्न होकर कहाः—"तुम्हें जो इच्छा हो, माँग लो। मैं सहर्ष देने को तैयार हूँ।" भाँड़ों ने कहाः— "राजन्! हम आपही का अन्न खाते हैं। आपकी कृपा से हमें रुपये पैसे की कमी नहीं है यदि आप प्रसन्न हैं तो कोई ऐसी कृपा कीजिये, जिससे हमारी प्रतिष्ठा में वृद्धि हो।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाँडों की यह बात सुन, राजा ने थगीधर को संकेत किया। श्रीपाल तुरन्त ही भाँडों को पान देने के लिये उठ खड़े हुए। उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाने का इससे बढ़कर दूसरा उपाय न था। ज्यों ही श्रीपाल कुमार उस बूढ़े भाँड के समीप पहुँच कर उसे पान देने लगे, त्यों ही वह आँखें फाड़-फाड़ कर उन्हें देखने लगा। कई बार नीचे से ऊपर तक निगाह डालने के बाद, वह हँसता हुआ, कुमार के गले से चिपट गया और कहने लगा किः—"वाह बेटा! आज न जाने मैं किसका मुँह देख कर उठा था, कि इतने दिनों के बाद तुझसे भेंट हुई। बेटा! तू हम लोगों को छोड़ कर कहाँ चला गया था? आज तुझे इस तरह जीता-जागता और स्वस्थ देखकर हमें बड़ा ही आनन्द हो रहा है।"

बूढ़े की बात पूरी भी न होने पायी थी, कि दूसरी ओर से एक बुढ़िया आकर बेटा-बेटा कहती श्रीपाल के शरीर से चिपट गयी। फिर तो मानो स्वजन-स्नेहियों का ताँता ही बँध गया। एक स्त्री श्रीपाल की बहन बन गयी, एक लड़का भाई बन गया, एक आदमी मामा बन गया, एक जन भानजा बन गया, एक बुढ़िया काकी बन गयी, एक स्त्री मामी बन गयी। इसी तरह सभी भाँड़ों ने कोई-न-कोई रिश्तेदारी निकाल कर श्रीपाल को चारों ओर से घेर लिया और इस प्रकार हर्ष व्यक्त करने लगे, मानों वास्तव में बरसों से बिछुड़े हुए किसी मनुष्य से भेंट हुई हो। अन्त में उस वृद्ध भाँड ने राजा से कहा :- 'हे राजन्! आज मुझे जो आनन्द हो रहा है, वह मैं वर्णन नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर सकता। यह मेरा पुत्र है। बहुत दिन हुए कुछ अप्रसन्न होकर चुपचाप न जाने कहाँ चला गया था। आज ईश्वर की कृपा से यहाँ अचानक भेंट हो गयी। यह सब मेरे परिवार के ही लोग हैं। केवल इसी पुत्र के बिना मेरा घर अन्धकार मय हो रहा था। आज इसके मिल जाने से हम लोगों का वह दुःख दूर हो गया । इसके लिये उस परमात्मा को, साथ आपको भी मैं अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ।"

भाँडकी यह बातें सुन, राजा बड़ी चिन्ता में पड़ गये। उनका जी सूख गया। वे अपने मन में कहने लगेः—"हाय! मैं यह क्या कर बैठा! बिना जाति-पाँति और कुल जाने मैंने इसके साथ अपनी कन्या का विवाह क्यों कर डाला। वास्तव में यह कार्य बड़ा ही अनुचित हो गया। भाँडकी बातों पर सन्देह करने का भी कोई कारण नहीं; क्योंकि यह सब इसके स्वजन-सम्बन्धी ही मालूम होते हैं। अफसोस! इसने हम सबको धर्म-भ्रष्ट कर दिया।"

इन विचारों के कारण राजा के मनमें बड़ी खलबली पैदा हो गयी। उसने तुरन्त नैमित्तिक को बुला भेजा। नैमित्तिक उसी क्षण सभा में आ, उपस्थित हुआ। उसे देखते ही राजा के क्रोध का ज्वालामुखी फट पड़ा। उसने गरज कर कहाः- "क्यों रे, नैमित्तिक! मेरे साथ यह चाल! विश्वासघात! तूने पहलेसे क्यों न बतलाया कि यह जाति का भाँड है।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नैमित्तिक ने कहा :—"सरकार! मैंने जो उस समय कहा था, वही मैं अब भी कह रहा हूँ। यह अनेक मातंगों का स्वामी है। मेरी बात कभी झूठी नहीं हो सकती।"

राजा ने नैमित्तिक की यह बातें समझना तो दूर रहा; पूरे तौर से सुना भी नहीं। उसे नैमित्तिक और श्रीपाल दोनों पर बड़ा क्रोध आया। उसने दोनों का प्राण ले, अपने क्रोध को शान्त करना स्थिर किया। मन-ही-मन वह इसके लिये आयोजन करने लगा।

नगर में चारों ओर विद्युत-वेग से यह समाचार फैल गया। राज-कुमारी मदनमञ्जरी को भी यह बात शीघ्र ही मालूम हो गयी। वह उसी समय अपने पिता के पास पहुँची। उसने उन्हें समझाते हुए कहा :— "पिताजी! जो कुछ करना हो, वह सोच-विचार कर कीजियेगा।" बिना बिचारे जो करे, सो पाछे पछिताय। "इन भाँडों की बात का खयाल न करिये। इसमें मुझे कुछ रहस्य मालूम होता है। रह गयी, कुमार के कुल और वंश की बात, सो यह किसी के छिपाये नहीं छिपती। मनुष्य के आचरणों से उसके कुल और जाति की परीक्षा हो जा सकती है। इसलिये आप किसी बात का दुःख न करें। अच्छी तरह सोच-विचार करने के बाद ही कोई कार्य करें।"

कुमारीकी यह बातें सुन, राजाने कुमार को अपने पास बुला कर कहा:—'अपने कुल और वंश का मुझे परिचय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीजिये।' कुमार ने कहाः—'राजन्! उत्तम पुरुष अपने मुँह से अपने कुल और वंश का परिचय कदापि नहीं देते । उनके कार्य ही उनके कुल को प्रकट कर दिया करते हैं। यदि आप मेरा कुल जानना ही चाहते हैं तो अपने समस्त सैन्य को युद्ध के लिये तैयार होने की आज्ञा दीजिये। एक ओर आपकी समूची सेना रहेगी, दूसरी ओर अकेला मैं रहूँगा। एक तलवार के अतिरिक्त दूसरा हथियार मैं अपने पास न रक्खूँगा। जिस समय आपकी सेना के साथ मेरा युद्ध छिड़ेगा, उस समय अनायास आपको मेरे वंश का पता मालूम हो जायगा। लेकिन मैं आपसे पूछता हूँ कि इस तरह पानी पीने के बाद जाति पूछने से क्या लाभ होगा? इस बात की जाँच तो पहले ही होनी चाहिये थी। खैर, आपको जो अच्छा मालूम हो वही कीजिये। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपको किसी प्रकार का मनः कष्ट पहुँचाना मेरा अभीष्ट नहीं है। मैं अपने मुँह से अपने वंश का परिचय कदापि न दूँगा। हाँ, यदि आप कुछ जानना ही चाहते हों, तो मैं एक सरल उपाय भी बतला देता हूँ। आज ही परदेश से हमारे शहर में आयी नौकाओं में मेरी दो रानियाँ भी हैं। यदि आप चाहें तो उन्हें बुला कर उनसे सब बातें जान सकते हैं। मुझे विश्वास है कि यह सब बातें बतलाने में उन्हें कोई आपत्ति न होगी।"

श्रीपाल की यह बात सुन, राजा ने तुरन्त अपने मन्त्रियों को, उनकी रानियों को ले आने की आज्ञा दी। मन्त्री लोग उसी समय पालकी लेकर समुद्र-तट पर जा पहुँचे। ज्योंही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्होंने दासी द्वारा यह समाचार रानियों के पास भेजा, कि श्रीपाल ने तुम्हें बुलाया है, त्योंही वे पालकी में बैठ, मन्त्रियों के साथ चल पड़ीं। उन्हें देख कर राजा को बड़ा ही हर्ष हुआ। श्रीपाल को इतने दिनों के बाद सकुशल देख, रानियाँ भी मारे आनन्द के फूली न समाती थीं। इस समय उन्हें अवर्णनीय आनन्द हो रहा था।

राजा ने शीघ्र ही उन दोनों से श्रीपाल का वंश-परिचय पूछा। तुरन्त ही विद्याधर की कन्या ने सारा हाल राजा को कह सुनाया। उसने स्वयं यह सब बातें विद्याचरण मुनि के मुँह से सुनी थीं। श्रीपाल का समस्त पूर्व-वृत्तान्त सुनाने के बाद उसने कहा :- "हम लोग रत्नद्वीप से प्रस्थान कर स्वदेश की ओर आ रहे थे। रास्ते में धवल सेठ नामक एक दुष्ट बनिये ने इन्हें समुद्र में ढकेल दिया था; किन्तु पुण्य के प्रताप से आज फिर हमलोग इन्हें अपने बीच में देख रही हैं।"

श्रीपाल कुमार का परिचय प्राप्त कर, राजा को अत्यन्त आनन्द हुआ। वे तुरन्त ही उन्हें पहचान गये। कहने लगे:- यह तो मेरे भानजे लगते हैं। जो हुआ सो अच्छा ही हुआ। यद्यपि मैंने बिना जाने-बूझे ही इनके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया था, किन्तु सौभाग्यवश यह सम्बन्ध मणि और कञ्चन के योग जैसा ही हुआ है।"

जिस भाण्ड-मण्डली ने श्रीपाल को अपना सम्बन्धी सिद्ध करने की चेष्टा की थी, उसपर राजा को अब बड़ा ही क्रोध आया। उसने उन सबोंको धमका कर पूछा:—"सच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहो, तुम लोगों ने यह प्रपञ्च-जाल क्यों बिछाया? भाँडोंने सोचा कि अब सच बात कहे बिना कल्याण नहीं। झूँठ बोल कर अधिक समय तक लोगों को नहीं ठगा जा सकता। उसी समय उन्होंने काँपते हुए कहाः—"महाराज! हम लोगों से बड़ा कसूर हुआ। यहाँ आये हुए एक सेठ ने हम लोगों से यह सब करने को कहा था। प्रलोभन में पड़कर हम लोग उसकी बातों में आ गये। हम लोगों का कसूर तो अवश्य है; किन्तु इसका मूल कारण वह सेठ ही है। उसका नाम 'धवल' है। वह हाल ही में किसी विदेश से यहाँ आया हुआ है।"

भाँडोंकी यह बात सुन कर राजा ने उसी समय धवल सेठ को पकड़ लाने की आज्ञा दी। आज्ञा मिलते ही वह खोज निकाला गया। उसी समय उसकी मुश्कें बाँध ली गयीं। शीघ्र ही वह राजा के सम्मुख उपस्थित किया गया। धवल सेठ ने देखा कि इस बार बुरी तरह फँसे। पहले तो श्रीपाल ने छुड़ाया था, अब कौन छुड़ायेगा? निदान, उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और राजा से क्षमा-प्रार्थना की; किन्तु राजा इस समय आपे से बाहर हो रहा था। उसे धवल और भाँड़ों का यह अपराध अक्षम्य प्रतीत हुआ। उसने उसी समय धवल और समस्त भाँडों को शूलीपर चढ़ा देने की आज्ञा दे दी।

श्रीपाल से अब न रहा गया। उनका दयालु हृदय पानी-पानी हो गया। उन्होंने तुरन्त राजा के पास पहुँच कर उन्हें यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज्ञा वापस लेने की प्रार्थना की। उन्होंने कहा:—"यह धवल सेठ तो मेरे पिता के समान हैं। इन्होंने मेरे साथ थोड़ी-बहुत बुराई अवश्य की है, किन्तु साथ ही उन्होंने मुझपर ऐसे-ऐसे उपकार भी किये हैं कि किसी तरह भी उनका बदला नहीं चुकाया जा सकता है। इन्हें जैसे हो वैसे छोड़ दीजिये। भाँडोंने जो कुछ किया वह प्रलोभन में पड़कर किया, अतएव इनका भी कोई दोष नहीं। कृपया इन सबको शीघ्र ही छोड़ दीजिये।"

राजा वसुपाल, श्रीपाल की बात भला कैसे टाल सकते थे? उन्होंने तुरन्त धवल सेठ और भाण्ड-मण्डली को मुक्त कर दिया। नैमित्तिकने भी इस अवसर से लाभ उठाना उचित समझा। अतः उसने राजा से कहा:—"महाराज! देखिये, जो मैं कहता था, वह बिलकुल ठीक निकला न? अब तो श्रीपाल कुमार के सम्बन्ध में आपको कोई सन्देह नहीं रहा?"

राजा ने मुस्कुरा कर कहा :—"नहीं, अब मुझे कोई सन्देह नहीं रहा। तुमने जो बातें कही थीं, वे सब ठीक निकलीं। मैं तुमपर बहुत ही प्रसन्न हूँ।" इतना कह, राजाने नैमित्तिक को बहुत सा धन देकर विदा किया। श्रीपाल भी राजा से विदा ग्रहण कर तीनों स्त्रियों के साथ अपने निवास-स्थान में चले आये।

धवल सेठ ने इस प्रकार श्रीपाल के साथ अनेक बुराइयाँ कीं। बारंबार उनका सर्वनाश करना चाहा, किन्तु श्रीपाल ने सौजन्यवश अपने व्यवहार में जरा भी अन्तर न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

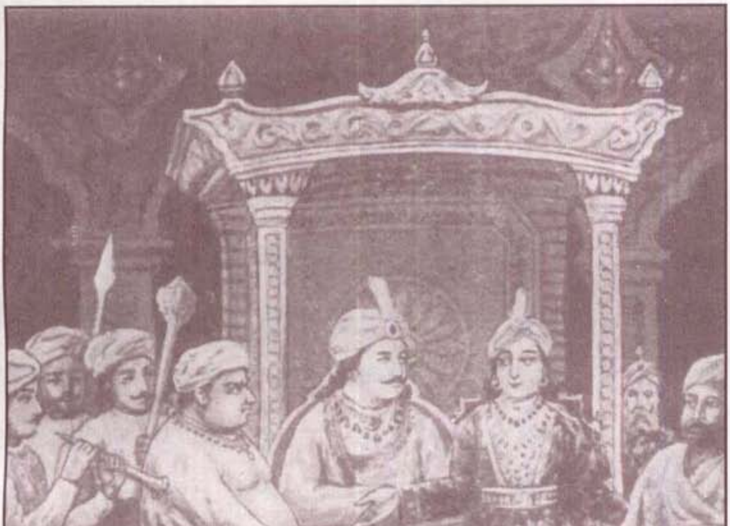

इन सबको शीघ्र ही छोड़ दीजिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आने दिया। अधिकाँश समय श्रीपाल उसे अपने साथ रखते, व्यापारादि के सम्बन्ध में उसे सलाह देते। किसी बात में भी जुदाई न दिखाते, किन्तु धवल सेठ के मनोविचार में जरा भी परिवर्तन न हुआ। वह पहले की ही तरह श्रीपाल की बुराई सोचता और उनका सर्वनाश करने की ही चिन्ता में रात-दिन लगा रहता था।

अब धवल के पाप का घड़ा लबालब भर गया था। 'विनाश काले विपरीत बुद्धिः' इस लोकोक्ति के अनुसार अन्त में उसकी बुद्धि एकदम ही भ्रष्ट हो गयी। उसने सोचा कि चाहे जैसे हो, श्रीपाल को परलोक का रास्ता दिखा देना चाहिये। निदान, उसने श्रीपाल के महल में प्रवेश कर रात को उनकी हत्या कर डालना स्थिर किया, किन्तु यह काम सहज न था। श्रीपाल कुमार महल के सातवें खण्ड में सोया करते थे। अतः उतना ऊँचे पहुँचना ही बड़ा मुश्किल था। बहुत कुछ सोच-विचार करने के बाद उसने गोह के सहारे ऊपर चढ़ना स्थिर किया। वह उसी दिन बाजार से एक बढ़िया गोह और रेशम की डोरी खरीद लाया। उस दिन बड़ी मुश्किल से रात बीती। एक क्षण भी एक-एक युग की तरह बीत रहा था। रात को श्रीपाल कुमार यथानियम अपने महल में सो रहे थे। आधी रात के समय धवल सेठ पहरेदारों से अपने को बचाता हुआ, महल के समीप पहुँचा। पहुँचते ही उसने गोह की कमर में वह रेशमी डोरी बाँध, उसे ऊपर फेंक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिया। गोह दिवाल के चिपट गयी। धवल सेठ अपनी कमर में कटारी लगाकर उस डोरी पर चढ़ने लगा। उसे इस प्रकार डोरी पर चढ़ने का अभ्यास न था। शरीर भारी और उम्र भी बड़ी थी, किन्तु इस समय उसके सिर पर हिंसा का भूत सवार था। इसीलिये वह ऊपर चढ़ता चला जाता था, किन्तु हम पहले ही कह चुके हैं कि उसके पाप का घड़ा भर गया था। अभी वह आधी दूर भी न पहुँचा था कि रस्सी हाथ से छूट जाने के कारण वह नीचे आ गिरा। श्रीपालको मारने के लिये उसने जो तीक्ष्ण कटारी ली थी, वह इस समय भी उसकी कमर में मौजूद थी। वही कटारी गिरते समय धवल के पेट में घुस गयी। फलतः वह कुछ ही क्षणों में छटपटा कर इस लोक से चल बसा। जो कटारी उसने श्रीपाल को मारने के लिये हाथ में ली थी, वही कटारी इस समय उसके लिये काल हो गयी।

सुबह होते ही लोगों ने चारों ओर से धवल सेठ की लाश को घेर लिया। गोह, रेशम की डोरी, कमर में कटारी :—यह सब चीजें धवल के मनोविचारों को प्रकाशित कर रही थीं। जो आता वही धिक्कारता और उसकी निन्दा करता, किन्तु श्रीपाल ने उसके दोषों को जरा भी अपने हृदय में स्थान न दिया। जैसे एक पुत्र अपने पिता का अन्तिम संस्कार करता है, उसी तरह श्रीपाल ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

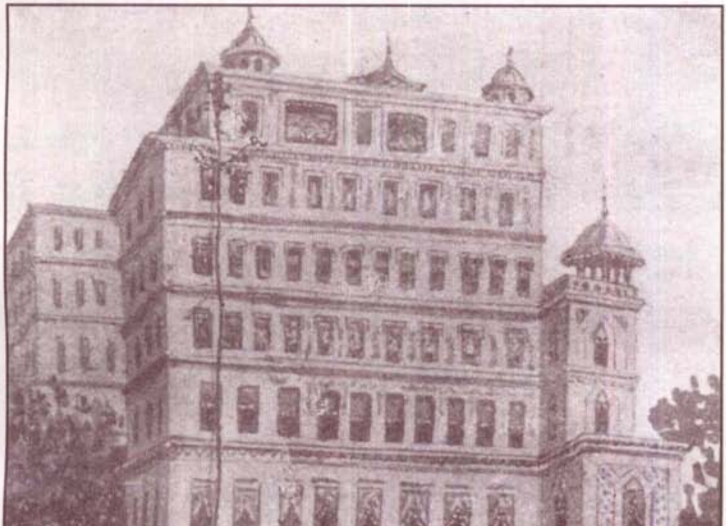

रस्सी हाथसे छुट जानेके कारण वह नीचे आ गिरा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धवल सेठ का अन्तिम संस्कार किया। धवल सेठ के शरीरान्त से वे इस प्रकार शोकाकुल दिखाई देते थे, मानों उनके पिता का ही शरीरान्त हो गया हो।

अन्तिम क्रिया से निवृत्त होने पर श्रीपाल ने धवल सेठ की पाँच सौ नौकायें अपने अधिकार में ले लीं। उसका सारा माल बाजार में बेच दिया। सब माल बिकनेपर हजारों रुपये इकट्ठे हुए; किन्तु उन्हें उपभोग करने के लिये धवल सेठ अब इस संसार में न था। श्रीपाल ने धवल सेठ के तीनों मित्रों को वह धन और उसकी व्यवस्था का भार सौंप दिया। उनकी इस उदारता और निःस्वार्थता को देख कर सब लोग आश्चर्य चकित हो गये। चारों ओर मुक्तकण्ठ से उनकी प्रशंसा होने लगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्यारहवाँ परिच्छेद

कुण्डलपुर की यात्रा

अब श्रीपाल कुमार के दिन बड़े ही आनन्द में कट रहे थे। वे इस समय अपने श्वसुर के अतिथि थे और अपनी तीनों रानियों के साथ चैन की बंशी बजाते थे। एक दिन वे बगीचे जा रहे थे। रास्ते में उन्हें बनजारों का एक दल मिला। उस दल के सरदार को बुलाकर श्रीपाल ने पूछा :– "आप लोग कहाँ से आ रहे हैं और कहाँ जायेंगे? रास्ते में आपको कोई आश्चर्य-जनक बात तो नहीं दिखायी दी?"

सरदार ने कहाः—"महाराज! हम लोग कान्तिपुर से आ रहे हैं और कम्बुद्वीप की ओर जा रहे हैं। रास्ते में हम लोगों ने एक बड़ी ही आश्चर्य-जनक बात देखी। क्या आप उसे सुनना पसन्द करेंगे?"

श्रीपालने कहा :— "क्यों नहीं ? सुनने के लिये ही तो आपको बुलाने का कष्ट दिया है।"

सरदार ने कहा :– "महाराज! सुनिये, यहां से करीब चार सौ कोसपर हमें कुण्डलपुर नामक एक शहर मिला। वहाँ मकरकेतु नामक एक राजा राज करता है। उसकी रानी का नाम कर्पूर तिलका है। उससे दो पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुई है। वह पुत्री बहुत ही गुणवान् है। रूप में तो मानो साक्षात्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रम्भा है। उसका नाम गुणसुन्दरी है। वह चौसठ कलाओं में पारंगत है। राग-रागिणी और ताल, स्वर आदि का उसे विशेष ज्ञान है। इसी से जब वह वीणा बजाती, तब औरों की कौन कहे, स्वयं ब्रह्मा भी आठों कान स्थिर कर उसे सुनने लगते हैं। राजकुमारी बड़ी समझदार है। वह जानती है, कि स्त्री चाहे जितनी पढ़ी लिखी हो, चाहे जितनी चतुर हो; किन्तु उसका जीवन तभी सार्थक हो सकता है, जब कि उसे वैसा ही चतुर पति मिले। यदि बिना जाने-बूझे, बिना देखे-सुने, किसी पुरुष से किसी स्त्री का विवाह कर दिया जाय और फिर उसे मूर्ख पति मिलने के कारण आजन्म दुःखमय जीवन व्यतीत करना पड़े, अतः वह ईश्वर से यही प्रार्थना किया करती कि मूर्खों का संग कभी न हो।

'रुष्ट हो गुणवान् पर, जो चाहिये सो कीजिये।
किन्तु मूर्खों का कभी मत संग भगवान् दीजिये।।'

अपने इन विचारों के कारण उसने प्रतिज्ञा की है कि जो वीणा बजाने में मुझे पराजित करेगा, वही मेरा पति होगा। उसकी इस प्रतिज्ञा की बात, चारों ओर दूर देशान्तरों में भी फैल गयी है। फलतः अनेक राजकुमारों ने उसे जीतने के लिये वीणा बजाने का अभ्यास करना आरम्भ किया है।

उसी नगर में एक गायनाचार्य रहते हैं। वे गाने-बजाने की कला में बहुत ही निपुण हैं। उनके निकट अनेक धनी-मानी युवक और राज-कुमार इसी विचार से शिक्षा प्राप्त कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहे हैं। अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि सारे शहर में जिसे देखिये वही इस उधेड़बुन में लगा हुआ दिखायी देता है। बाजार में देखिये, बनिया अपनी दुकानपर बैठा हुआ वीणा बजा रहा है। जंगल में देखिये, चरवाहे पशु चराते हुए वीणा बजाने का अभ्यास कर रहे हैं। खेतों में देखिये, किसान भी वीणा ही बजा रहे हैं। चारों ओर जिधर जाइये, उधर वीणा का ही मधुर स्वर सुनायी देता है। व्यापारियों का व्यापार करने की ओर ध्यान नहीं जाता। किसान खेती करना भूल जाते हैं। चरवाहे गौओं को जंगल ही में छोड़कर वीणा की धुन में न जाने कहाँ चले जाते हैं। यह सब बाते देख कर हम लोग आश्चर्य से चकित हो गये हैं। अब तक उस राज-कुमारी को वीणा-वाद में कोई जीत नहीं सका। वह जितनी सुशील और सुन्दरी है, उतनी ही गुणवती भी है। यदि आप उसे एक बार देखेंगे, तो निश्चय हमारी बातों पर विश्वास हो जायेगा।"

सरदार ने यह सब बातें बतलाकर विदा माँगी। कुमार ने भी इनाम देकर उसे बिदा किया। अनन्तर शाम को जिस समय वे अपने महल में आये, उस समय मन में सोचने लगे कि जैसे भी हो, यह कौतुक देखने के लिये कुण्डलपुर जाना चाहिये, किन्तु यह कार्य कैसे हो सकेगा? यह नगर तो यहाँ से बहुत दूरी पर है। वहाँ हम कैसे पहुंच सकते हैं। पँख होते तो जरूर वहाँ उड़ कर पहुँच जाते और यह कौतुक देखते,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु इस अवस्था में वहाँ पहुँचना असम्भव ही दिखायी देता है। कुछ समय के अनन्तर श्रीपाल को विचार आया कि मुझे यह चिन्ता ही क्यों करनी चाहिये? मुझ पर तो सिद्धचक्र की पूर्ण कृपा है। वही मेरे सब मनोरथ पूर्ण करेगा। अब तक मैंने जितने कार्य किये हैं, वह सब सिद्धचक्र की कृपा से पूर्ण हुए हैं। क्या अब यह काम न होगा? अवश्य होगा। मुझे उस पर अटल विश्वास रखना चाहिये।

इस प्रकार विचार कर श्रीपाल सिद्धचक्र का ध्यान करने लगे। थोड़े ही समय में विमलेश्वर नामक एक देवता प्रकट हुए। वे सौन्दर्य देवलोक के निवासी थे और सिद्धचक्र के अधिष्ठायक थे। उन्होंने श्रीपाल को एक मणिमाला पहना कर कहा:—"हे कुमार! यह माला बहुत ही प्रभावशाली है। इसके प्रभाव से इच्छित रूप की प्राप्ति होती है। जहाँ इच्छा हो, वहाँ आकाश मार्ग से जाया जा सकता है। बिना अभ्यास के जो चाहे वह विद्या सीखी जा सकती है एवं सभी तरह के जहर का असर दूर हो सकता है। मैं सिद्धचक्र का आज्ञाकारी सेवक हूँ। उनके अनेक भक्तों का मैंने उद्धार किया है। तुम भी इसी तरह सिद्धचक्र की भक्ति करते रहना और जब जरूरत हो, तब मुझे याद करना।"

इतना कह, देवता अन्तर्धान हो गये। अनन्तर श्रीपाल निश्चिन्त होकर सो रहे । सुबह बिछौने से उठ कर ज्यों ही उन्होंने कुण्डलपुर जाने की इच्छा की, त्यों ही उन्हान अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को कुण्डलपुर नगर के दरवाजे पर खड़ा पाया। वहाँ का दरवान भी खड़ा-खड़ा वीणा बजा रहा था। श्रीपाल ने नगर में प्रवेश करने के पहले अपना रूप बदल डालना आवश्यक समझा। अतएव इच्छा करते ही उनका सुन्दर शरीर विरूप हो गया। लम्बा मुँह, तुम्बड़ी जैसा शिर, छोटी-छोटी आँखें, बेढंग दांत, बड़े होंठ, चिपटी नाक, गिटकी जैसे कान, बड़ासा कूबड़, पीठ से मिला हुआ पेट, छोटी-छोटी जाँघें, वामन के से पैर, ठुमकती हुई चाल प्रभृति देखते ही बनती थीं। उन्होंने इसी विचित्र वेश में प्रवेश किया।

श्रीपाल का यह रूप देख कर लोग उनकी हँसी उड़ाने लगे। वे जिधर ही जाते उधर ही लोग उन्हें घेर कर खड़े हो जाते। किसी तरह जब आगे चलते, तो लड़कों का झुण्ड पीछे से तालियाँ बजाता। खैर, किसी तरह कुमार चलते हुए उस गायनाचार्य के यहाँ पहुँचे, जो अनेक राज-कुमारों को शिक्षा दे रहा था। वहाँ पर जितने राज-कुमार उपस्थित थे, वे सभी श्रीपाल को देखते ही हँस पड़े। कहने लगे :— "आइये वामनजी! कहिये, कहाँ से सवारी आ रही है? कहाँ जाइयेगा? आज आप किसका घर पवित्र कर मनोकामना पूरी करेंगे?"

श्रीपाल ने कहाः—"भाइयो! मैं बहुत दूर से आ रहा हूँ। जिस काम के लिये आप लोग यहाँ कष्ट उठा रहे हैं, उसी काम के लिये मैं भी आया हूँ। आप लोग अभी मुझे देख कर हँस रहे हैं, किन्तु ईश्वर ने चाहा, तो मैं थोड़े ही दिनों में आप लोगों से आगे बढ़ कर राजसम्मान प्राप्त करूँगा।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीपाल कुमार की यह बातें सुन, वे सब लोग और भी उनकी दिल्लगी करने लगे। कहने लगे:—"सच है, वामन महाराज! राज-कुमारी तुम्हें न पसन्द करेगी तो भला और किसे करेगी? आइये, शौक से वीणा बजाना सीखिये।"

इसी तरह लोगों की हँसी दिल्लगी और ताने सुनते हुए श्रीपाल गायनाचार्य के निकट पहुँचे। उसके पास पहुँचते ही उन्होंने एक बहु-मूल्य खड्ग उसे अर्पण किया! रुपये में बड़ी शक्ति होती है। वह सब विघ्न-बाधाओं को दूर कर देता है। खड्ग देखते ही गायनाचार्य का चेहरा मारे खुशी के खिल उठा। उसने श्रीपाल को अपने पास बैठा कर उन्हें एक वीणा दी। स्वर तथा नाद आदि के स्थान बताकर बजाने को कहा। श्रीपाल को वीणा बजाने का अभ्यास तो था ही नहीं, अतः उसे हाथ में लेते ही उसके तार टूट गये। यह देखकर गायनाचार्य की समस्त शिष्य-मण्डली ठठा कर हँस पड़ी। सभी कहने लगे:—"वाह! एक ही हाथ में वीणा की सफाई! बजानेवाला हो तो ऐसा ही हो!"

श्रीपाल ने इन दिल्लगियों की कोई पर्वाह न की। उन्होंने अपना अभ्यास जारी रक्खा, किन्तु यह केवल दिखावे का अभ्यास था। वास्तव में श्रीपाल को कुछ भी सीखना न था। सिद्धचक्र के प्रताप से उन्हें बिना सीखे ही इस कला में पारदर्शिता प्राप्त हो चुकी थी ; किन्तु उन्होंने किसी से भी यह भेद बताना उचित न समझा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ ही दिनों के बाद, राज-कुमारी एवं उससे पाणिग्रहण करने के इच्छुक लोगों की, वीणावादन-कला की परीक्षा के निमित्त एक विराट सभा का आयोजन किया गया। इस कलाके कई विद्वान् पण्डित मध्यस्थ बनाये गये। राज-कुमारी सरस्वती की भाँति हाथ में वीणा और पुस्तक लेकर सभा में उपस्थित हुई। अन्यान्य लोगों के साथ जब श्रीपाल भी वहाँ पहुँचे, तो उनका विरूप रूप देखकर दरवान ने उन्हें अन्दर जाने से रोका। तुरंत ही कुमार ने उसे एक रत्नाभूषण इनाम देकर राजी कर लिया और सभा-भवन में पहुँच गये।

सभा-भवन में जाते ही श्रीपाल ने एक कौतुक किया। दूसरों की दृष्टि में विरूप होते हुए भी उन्होंने राज-कुमारी को अपना प्रकृत रूप दिखा दिया। उनका वह देवकुमारसा रूप-सौन्दर्य देख कर राज-कुमारी मोहित हो गयी। वह मन-ही-मन ईश्वर से प्रार्थना करने लगी कि:– "हे नाथ ! इसी पुरुष को मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करने की शक्ति दीजिये, जिससे इसी के साथ मेरा विवाह हो और मेरा जन्म सार्थक हो। यदि इसने मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण न की तो मैं किसी अयोग्य पुरुष के साथ विवाह करने की अपेक्षा आजन्म कुमारी ही रहना अधिक पसन्द करूँगी।"

जिस समय सब लोग सभा में आये उस समय सभापति ने राज-कुमारों एवं अन्य लोगों को अपना-अपना कला-कौशल दिखाने की आज्ञा दी। सभी पुरुषों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के, अपनी-अपनी कला प्रदर्शित करने के बाद, राज-कुमारी ने भी अपना कौशल दिखाया। मध्यस्थ पण्डितों ने कहा :—"धन्य है, राज-कुमारी को ! यहाँ जितने राजकुमार उपस्थित हैं, उनके और राज-कुमारी के कला-कौशल में जमीन आसमान का अन्तर है। किसी को भी राज-कुमारी से श्रेष्ठ नहीं ठहराया जा सकता।"

पण्डितों का यह निर्णय सुनकर, राजकुमारों का चेहरा पीला पड़ गया। वे ऐसे निस्तेज हो गये जैसे सूर्य के सम्मुख तारा और चन्द्र निस्तेज हो जाते हैं। यह देखकर कुमार श्रीपाल आगे बढ़े। राज-कुमारी ने उनके हाथ में एक वीणा दी। वीणा देखते ही कुमार ने उसके गुण दोष समझ लिये। उन्होंने कहा:— "यह वीणा ठीक नहीं है। इसकी तुम्बड़ी में दोष रह गया है और इसका यह दण्ड भी जला हुआ है।"

कुमार की यह बातें सुन, राज-कुमारी और पण्डितों को परमानन्द हुआ। उसी समय उनके हाथ में दूसरी वीणा दी गयी। कुमार ने भी अपना कौशल दिखाना आरम्भ किया। उनके वीणा-वादन में ऐसी मोहिनी, ऐसा माधुर्य और ऐसा जादू था, कि सब सुनने वाले निद्राभिभूत हो गये। इस समय कुमार को एक परिहास करने की सूझी। उन्होंने सब लोगों के वस्त्राभूषण उतार कर सभा-मण्डप में उनका ढेर लगा दिया; लेकिन लोगों को होश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न हुआ। कुछ समय के बाद जब वे लोग सचेत हुए, तब अपनी यह अवस्था देखकर विस्मय पूर्वक बड़े ही लज्जित हुए। अब राज-कुमारी की प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी थी। उसने कुमार के गले में वर-माला पहना दी। उसे कुमार का प्रकृत रूप दिखाई देता था, इसलिये वह उनपर तन-मन से मुग्ध हो रही थी, किन्तु दूसरे लोगों को वह रूप न दिखाई देता था, इसलिये राज-कुमारी को ऐसे विरूप पति की प्राप्ति देखकर वे दुःखित होने लगे। अब कुमार ने अपना प्रकृत रूप धारण कर लिया। उनका वह रूप देखते ही चारों ओर से धन्य-धन्य की आवाज आने लगी। राजकुमारी और श्रीपाल की इस अनुपम जोड़ी की लोग मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे। अनन्तर राजा ने बड़े समारोह के साथ दोनों को विवाह-सूत्र में आबद्ध कर दिया। अब श्रीपाल अपनी इस नूतन वधू के साथ वहीं रहने और आनन्द करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारहवाँ परिच्छेद

समस्या-पूर्ति

हम यह पहले ही कह चुके है कि श्रीपाल कुमार नयी-नयी बातें सुनने के लिये सदा उत्सुक रहते थे। एक दिन किसी यात्री ने आकर उनसे कहा:– 'कुमार! यदि आप सुनें तो एक आश्चर्य-जनक बात आपको सुनाऊँ।'

श्रीपाल ने कहा:— "बड़ी खुशी से कहिये, मैं सुनने को तैयार हूँ।"

यात्री ने कहा:– "यहाँ से तीन सौ योजन की दूरी पर कञ्चनपुर नामक एक नगर है। वहाँ वज्रसेन नामक राजा राज करता है। उसकी पटरानी का नाम कञ्चनमाला है। उसने चार कुमार और एक कुमारी को जन्म दिया है। कुमारी का नाम त्रैलोक्यसुन्दरी है। वह बड़ी ही रूपवती है। इस समय उसकी अवस्था विवाह करने के योग्य हो गयी, अतः राजा ने उसके स्वयंवर के लिये एक विशाल मण्डप बनवाया है। उस मण्डप के स्तम्भों पर मणि और काञ्चन से बनी हुई पुतलियाँ बैठाई गयी हैं। अभ्यागतों के स्वागतार्थ बहुत ही उत्तम प्रबन्ध किया गया है। स्वयंवर के लिये आषाढ़ शुक्ला पञ्चमी का दिन निर्धारित किया जा चुका है। यह समारोह आप जैसे राज-कुमार के लिये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवश्य ही देखने योग्य था, किन्तु अब समय नहीं रहा! क्योंकि आषाढ़ शुक्ला पञ्चमी तो कल ही है।"

यात्री की यह बातें सुन, श्रीपाल को कञ्चनपुर जाने की पूर्ण इच्छा हो गई। उन्होंने पूर्ववत् अपना रूप बदल लिया। तदनन्तर कञ्चनपुर का ध्यान करते ही वे, देव-प्रदत्त हार के प्रभाव से दूसरे दिन प्रातःकाल वहाँ पहुँच गये।

शहर की शोभा देखते हुए श्रीपाल कुमार स्वयंवर-मण्डप के पास पहुँचे। दरवान ने उनका विरूप देखकर उन्हें भीतर में प्रवेश करने से रोका, किन्तु कुमार ने उसे एक आभूषण देकर उसकी सम्मति प्राप्त कर ली। वे मण्डप में प्रवेश कर मणि की पुतली के पास जा बैठे। वहाँ अनेक राज-कुमार और राजा-महाराजा बैठे हुए थे। वे सब श्रीपाल को देखकर उनका उपहास करने लगे। किसी ने पूछा :- "महाराज! कहिये, आप यहाँ क्यों आये हैं?" श्रीपाल ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया:—"जिस काम के लिये आप आये हैं, उसी काम के लिये मैं भी आया हूँ।" कुमार का यह उत्तर सुन, लोग ठठाकर हँस पड़े। कहने लगे:-"ठीक है, कुमारी, अवश्य आपको ही पसन्द करेंगी। क्योंकि उसे आप जैसा रूपवान और गुणवान दूसरा वर और कहाँ मिलेगा?"

जिस समय इस प्रकार हँसी-दिल्लगी हो रही थी, उसी समय राज-कुमारी भी वहाँ आ पहुँची। उसके आते ही सभा-मण्डप उसके अलौकिक तेज के कारण आलोकित हो उठा। एकबार मानो बिजली चमक गयी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राज-कुमारी अपने कण्ठ में सफेद मोतियों की मनोहर माला पहने, हाथ में वर-माला लिये हुए, गजकी सी मदमाती चाल से सभा-मण्डप के मध्यभाग में पहुँची। वहीं श्रीपाल बैठे हुए थे। उन्होंने कुमारी को अपना प्रकृत रूप दिखा दिया। उनका वह अलौकिक रूप देखते ही वह उनपर मुग्ध हो गयी; किन्तु उनका यह रूप केवल कुमारी ही देख सकती थी। दूसरे लोग तो उन्हें कुरूप ही समझ रहे थे। श्रीपाल ने राजकुमारी के स्नेह की परीक्षा करने के लिये उसे बीच-बीच में अपना कुरूप भी दिखाने लगे। इससे कुमारी बड़े असमन्जस में पड़ गयी। वह निश्चय न कर सकती थी कि इन दोनों में से कुमार का प्रकृत रूप कौन है? फिर भी वह उन पर तन-मन से अनुरक्त हो रही थी।

प्रथानुसार राज-कुमारी की सखियाँ उसके आगे चलती हुई, भिन्न-भिन्न राजाओं की कीर्ति का वर्णन कर, उसे उनका परिचय देने लगीं। जिस समय जिस राजा की कीर्ति का वर्णन किया जाता, उस समय उस राजा का मुखमण्डल प्रदीप्त हो उठता, किन्तु राजकुमारी किसी में देशका, किसी में उम्र का, किसी में रूप का और किसी में शील स्वभाव का दोष बता कर, उसे वरण के लिये अयोग्य ठहराती। कुमारी के इस व्यवहार से उन राजाओं पर मानों घड़ों पानी पड़ जाता था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार अनेक राजा महाराजाओं को नापसन्द कर, राज-कुमारी श्रीपाल के समीप पहुँची। वहाँपर वह ऐसे खड़ी हो गयी, जैसे कामदेव के समीप रति खड़ी हो। संसार में मीठे पदार्थों की कमी नहीं है। रुचि और पसन्दगी की बात है। जिसकी तबियत जिसपर जम जाती है, वही उसे सुन्दर, श्रेष्ठ और सर्वगुण-सम्पन्न मालूम होता है। राज-कुमारी पहले ही से श्रीपाल पर मुग्ध हो रही थी, इसलिये दूसरों पर अब उसकी तबियत ही न जमती थी। इतने में मणिमाला के अधिष्ठायक देवताने स्तंभ में लगी हुई एक पुतली में प्रवेश करके कहाः— "हे राज कुमारी। यदि तू वास्तव में चतुर और गुण-ग्राहक है, तो इस वामन को पसन्द कर!" यह दैवी-वाणी सुनते ही राज-कन्या ने उसी समय श्रीपाल के गले में वर-माला पहना दी।

श्रीपाल ने इस समय अपना रूप और भी विरूप बना लिया। उन्हें देखकर अनेक राजाओं को बड़ा क्रोध आया। उनका हृदय प्रबल ईर्ष्याग्नि से जल उठा। वे कहने लगेः— "राज-कन्या इस वामन पर मुग्ध हो, तो भले ही इससे विवाह कर ले। किन्तु हमलोग अपने जीते-जी यह अनर्थ न होने देंगे।" वे लोग श्रीपाल को ललकार कर कहने लगेः—"हे वामन! यह सुन्दरी तेरे योग्य नहीं है, इसलिये तू अपने मन से ही वर-माला त्याग दे। अन्यथा हम लोग तेरा शिर काट डालेंगे।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसी बन्दर-घुड़कियों से श्रीपाल कब डरनेवाले थे! उसी समय उन्होंने निर्भयता पूर्वक उत्तर दिया:— "हे मूर्खो! राज-कन्या ने तुम्हारे साथ विवाह न किया तो इसमें मेरा क्या दोष? मुझ पर क्यों नाराज होते हो? विधाता पर क्यों नहीं होते? अब तुम्हें यह भी सोचना चाहिये, कि राज-कन्या पर-स्त्री हो चुकी है। उसकी अभिलाषा करना—पर स्त्री की अभिलाषा करना है। अब तुम्हें इस पाप के कारण मेरे खड्ग रूपी तीर्थ में पवित्र होना पड़ेगा।"

इतना कहते ही श्रीपाल कुमार ने म्यान से अपनी तलवार खींच ली और दो चार ऐसे हाथ दिखाये, कि उनके विरोधियों को भागना कठिन हो पड़ा। श्रीपाल का यह पराक्रम देख, देवता भी प्रसन्न हो उठे। उस समय उन्होंने आकाश से पुष्प-वृष्टि की। इससे राजा वज्रसेन को सीमातीत आनन्द हुआ। उन्होंने श्रीपाल से कहा:— "हे कुमार! जैसे आपने अपना पराक्रम दिखाया है, वैसे ही अब अपना रूप भी दिखाइये। अब अधिक समय हमें भ्रम में न रखिये।" राजा की यह बात सुन कुमार ने अपना प्रकृत रूप प्रकट किया। श्रीपाल कुमार का अद्भुत रूप देखकर राजा और उनके परिजन तथा पुरजनों को बहुत ही आनन्द हुआ। उसी दिन राजा ने बड़े समारोह से उनके साथ राजकन्या का विवाह करा दिया, और कुमार के रहने के लिए एक विशाल महल भी खाली करा दिया, अब श्रीपाल अपनी नव-विवाहिता रानी के साथ वहीं आनन्द-पूर्वक रहने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक दिन श्रीपाल कुमार राज-सभा में बैठे हुए थे। उसी समय वहाँ कोई प्रवासी मनुष्य जा पहुँचा। उसने इधर-उधर की बातें करते हुए कुमार को बतलाया कि यहाँ से कुछ दूर दलपत्तन नामक एक नगर है। वहाँ धरापाल नामक राजा राज करता है। उसके सब मिला कर ८४ रानियाँ हैं। उनमें गुणमाला नामक रानी सबसे बड़ी है। उसने पाँच पुत्र और एक पुत्री को जन्म दिया है। उस पुत्री का नाम श्रृंगारसुन्दरी है। रूप और गुण में उसकी कोई समता नहीं कर सकता। जैसा अलोकिक उसका रूप है, वैसे ही अलौकिक उसके गुण हैं। पण्डिता, विचक्षणा, प्रगुणा, निपुणा और दक्षा नामक उसके पाँच सखियाँ हैं। राजकुमारी और उसकी इन पाँचों सखियों को जैनधर्म के शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान है।

एक दिन राज-कन्या ने अपनी सखियों से कहा कि:-"हम लोगों को परीक्षा करने के बाद किसी विद्वान् और जैन-धर्म के मर्मज्ञ के साथ ही विवाह करना होगा; क्योंकि मूर्ख और विद्वान् का साथ पड़ जाने से जीवन ही नष्ट हो जाता है।"

पण्डिता नामक सखी ने कहा :- "कुमारी ! तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। हम लोगों को परीक्षा का कोई उपाय अभी से सोच रखना चाहिये। मैं समझती हूँ कि हम लोगों को एक-एक समस्या तैयार कर लेनी चाहिये और यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घोषित कर देना चाहिये, कि जो हमारी समस्या की संतोषजनक पूर्ति कर देगा, वही हमारे तन-मन का अधिकारी अर्थात् हमारा पति होगा। जिस तरह एक दाना टटोलने से समूचे पात्र के अन्न की परीक्षा हो जाती है, उसी तरह हमारी समस्याओं से पात्र, कुपात्र और उसके गुण-दोष का पता चल जायगा।"

पण्डिता की यह बात सब सखियों को पसन्द आ गयी, इसलिये उन्होंने एक-एक समस्या बना रखी है। अबतक हजारों आदमी जा चुके; किन्तु कोई भी उनकी समस्याओं का सन्तोष जनक उत्तर नहीं दे सका।

श्रीपाल को तो यह बात सुनने ही भर की देर थी। ज्यों ही राज-सभा से वे अपने निवास-स्थान को लौटे, त्योंही उन्होंने उस मणिमाला के अधिष्ठायक देवता का स्मरण किया। उसी समय उसने कुमार को उनके आदेशानुसार दलपत्तन पहुँचा दिया। वहाँ पहुँचते ही वह राज-कुमारी के पास पहुँचे और उसे अपनी समस्या बतलाने को कहा। कुमारी ने अपनी सखियों की ओर संकेत किया। वे उसके संकेत को समझ गयीं। उसी समय उन्होंने राज-कुमारी की और साथ ही अपनी भी सारी समस्याएँ उनको कह सुनायीं।

श्रीपालने सोचा कि, केवल समस्या-पूर्ति करने में ही कोई मजा नहीं है। समस्या-पूर्ति करने के साथ-साथ कोई चमत्कार भी अवश्य दिखाना चाहिये। उसी समय उनकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टि पास ही रखे हुए पुतलेपर जा पड़ी। श्रीपाल कुमार ने सिद्ध चक्र का ध्यान कर ज्योंही उस पुतले के शिर पर हाथ रखा, त्योंही वह जड़ पुतला चैतन्य हो उठा। उसने देखते-ही-देखते राज-कन्या एवं उसकी पाँचों सखियों की समस्याओं की यथोचित पूर्ति कर दी।

पुतले का यह अद्‌भुत कार्य और श्रीपाल की अलौकिक शक्ति देख कर सब लोग आश्चर्य से स्तम्भित हो गये। उसी समय राज-कुमारी एवं उसकी सखियों ने अपना तन-मन श्रीपाल को समर्पित कर दिया। राजा ने भी उसी समय यह हर्ष-संवाद सुना। अपनी कन्या को योग्य पति मिलने के कारण वह बड़ा ही प्रसन्न हुआ। अनन्तर कुछ समय के बाद उसने श्रीपाल के साथ बड़ी धूम-धाम से राज-कन्या और उसकी पाँचों सखियों का विवाह कर दिया। इस बार श्रीपाल कुमार एक-से-एक बढ़कर, विदुषी और रूपवती छह स्त्रियों को पाकर, मन-ही-मन अपने भाग्य की सराहना करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरहवाँ परिच्छेद

राधा-वेधमें सफलता

जिस समय श्रृंगारसुन्दरी और उसकी पाँच सखियों के साथ श्रीपाल कुमार का समस्या-संवाद हो रहा था, उस समय वहाँ किसी देश से आया हुआ अंगभट्ट नामक एक ब्राह्मण भी उपस्थित था। वह श्रीपाल के चमत्कार को देखकर मन-ही-मन उनपर प्रसन्न हो रहा था। एक दिन समय पाकर वही अंगभट्ट ब्राह्मण श्रीपाल के पास आया। आशीर्वाद देने के पश्चात् उसने उनसे कहाः— 'हे कुमार! मैं एक बात कहता हूँ, उसे सुनिये। यहाँ से कुछ दूरी पर कोल्लागपुर नामक एक शहर है। वहाँ पुरन्दर नामक राजा राज करता है। उसके विजया नामक एक रानी है। उस रानी ने सात पुत्र और एक पुत्री को जन्म दिया है। वह इतनी सुन्दर है कि रम्भा आदि अप्सराओं से भी उसकी तुलना नहीं की जा सकती। एक तो सौन्दर्य, दूसरे यौवन—दोनों के कारण उसमें इस समय सोना और सुगन्ध की कहावत चरितार्थ हो रही है। एक दिन राजा ने राजकुमारी के शिक्षा-गुरुसे पूछाः-"महाराज ! राज-कुमारी के विवाह के सम्बन्ध में आपकी क्या सम्मति है?"

शिक्षा-गुरु ने कहा :—"राजन! जिस समय मैं राज-कुमारी को कलाओं की शिक्षा दे रहा था, उस समय एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिन उसने मुझसे प्रश्न किया कि राधावेध किसे कहते है? तब मैंने उसे राधावेध का वर्णन करते हुए बतलाया, कि एक स्तम्भपर आठ चक्र लगाये जाते हैं। इनमें से चार चक्र उत्तर की ओर और चार चक्र दक्षिण की ओर घूमते हैं। दोनों ओर के चक्रों के ऊपर एक पुतली बैठायी जाती है। उस पुतली को राधा कहते हैं। जब चक्र घूमते हैं, तब उनके किनारे पर जो दाँत बने रहते हैं, उनमें से वह पुतली दिखायी देती है स्तम्भ के नीचे तेल से भरा हुआ एक कड़ाह रख दिया जाता है। उसमें चक्र और पुतली का प्रतिबिम्ब पड़ता है। वेध करनेवाले को कड़ाह में वह प्रतिबिम्ब देखते हुए ऊपर की ओर बाण छोड़ना पड़ता है। अगर बाण चक्र के दाँतों में बिना लगे ही ऊपर निकल जाता है और पुतली की बायीं आँख छेद देता है, तो वह वेध करनेवाला विजयी समझा जाता है, किन्तु यह बहुत ही कठिन कार्य है। सब कोई इसे नहीं कर सकते। किसी विरले ही मनुष्य को यह सफलता मिलती है। राज-कुमारी ने मेरी यह बात सुनकर उसी दिन प्रतिज्ञा की है कि जो राधा वेध में सफलता प्राप्त करेगा, उसी को मैं अपना पति बनाऊँगी। इसलिये हे राजन्! आप एक बड़ा मण्डप बनवा कर राधावेधका आयोजन कीजिये और उसमें भाग लेने के लिये देश-देशान्तर के राजा और राजकुमारों को निमन्त्रण भेजिये। इस कठिन परीक्षा में जो उत्तीर्ण होगा, वही राज-कन्या के पाणि ग्रहण का अधिकारी होगा।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंगभट्ट ने श्रीपाल को यह समाचार बतलाते हुए, अन्त में उसने कहा:— "हे कुमार! शिक्षा गुरु की यह बात सुन राजा ने राधावेध का आयोजन किया है। अबतक अनेक राजकुमार आ चुके, किन्तु किसी को भी इसमें सफलता नहीं मिली। आपकी विद्या-बुद्धि मुझे कुछ विचित्र ही दिखायी देती है। अतः मैं समझता हूँ, कि यदि आप वहाँ पहुँच जायें तो अवश्य ही आपको उसमें सफलता मिलेगी।"

अंगभट्ट से यह वृत्तान्त सुन लेने के बाद श्रीपाल ने उसे दो कुण्डल उपहार दे, बिदा किया। रात को बहुत कुछ सोच विचार करने के बात, उन्होंने वहाँ जाना स्थिर किया। हार के प्रभाव से सुबह होते ही वह कोल्लागपुर पहुँच गये।

राधावेध करना उनके लिये कोई कठिन कार्य न था। उन्होंने राजा और सभा-जनों के सम्मुख देखते-ही-देखते पुतली की बायीं आँख छेद डाली। उसी समय राजा ने उन्हें विजयी घोषित किया। राज-कुमारी ने भी उसी क्षण उनके गले में वर-माला पहना दी। तदनन्तर राजा ने शुभ मुहूर्त्त में बड़े समारोह से दोनों का विवाह करा दिया। अब श्रीपाल कुमार राजा के दिये हुए निवास-स्थान में रह कर, उनका आतिथ्य ग्रहण करते हुए अपनी नयी दुलहिन के साथ सुखोपभोग करने लगे।

पाठकों को यह स्मरण होगा, कि श्रीपाल कुमार थाणापुरी में अपने मामा को बिना किसी प्रकार की सूचना दिये ही वे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहां से चले आये थे। इससे वहाँ पहले तो बड़ा हाहाकार मच गया; किन्तु पश्चात् अपने पराक्रमों के कारण वे छिपे न रह सके। अपना चातुर्य्य और बल दिखा कर जिस समय वे नया विवाह करते, उस समय उनके मामा को उनका पता चल जाता था। अन्त में उन्होंने उन्हें बुला लाने के लिये कोल्लागपुर की ओर दूत रवाना किये। वे यथासमय श्रीपाल से आ मिले, और उन्हें उनके मामा का सन्देश कह सुनाया।

श्रीपाल कुमार भी अब अपने देश की ओर लौटना चाहते थे, इसलिये उन्होंने भिन्न-भिन्न स्थानों में रखी हुई अपनी रानियों को बुला भेजा। कुछ ही दिनों में सब रानियाँ आ पहुँची। सभी के साथ अंग-रक्षक के रूप में कुछ-न-कुछ सैनिक भी आये थे। अनन्तर श्रीपाल कुमार पुरन्दर राजा से बिदा ग्रहण कर, उन सबों के साथ, थाणापुरी की ओर रवाना हुए और कुछ ही दिनों में वे वहाँ जा पहुँचे। उन्हें देख, वसुपाल राजा को बड़ा ही आनन्द हुआ। बड़ी धूम-धाम से वे श्रीपाल को नगर में ले गये। कुछ दिन तक श्रीपाल वहाँ बड़े आनन्द से रहे। अनन्तर अपुत्र होने के कारण वसुपाल राजा ने श्रीपाल को अपनी गद्दी पर बैठा दिया। श्रीपाल अब तक राजा होने पर भी राजा न थे, किन्तु अब वे यथानियम सिंहासनारूढ़ हो, राजा की भाँति प्रजा-पालन करने लगे।

श्रीपाल कुमार को अपनी माता से अलग हुए बहुत दिन हो चुके थे। उनका हृदय अब उनसे मिलने के लिये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्यन्त व्याकुल हो रहा था। अतएव उन्होंने कुछ दिनों के बाद यहाँ से भी सदल बल प्रस्थान किया। मार्ग में अनेक राजाओं से अधीनता स्वीकार कराते और भेंट लेते हुए, वे सोपारकपुर पहुँचे। वहाँ का राजा उनसे मिलने न आया। इसलिये श्रीपाल ने अपने मन्त्रियों से पूछा, कि अन्यान्य राजाओं की भाँति यह राजा हम लोगों से मिलने क्यों न आया? मन्त्रियों ने कहा :—“राजन् ! यहाँ का राजा बहुत ही भला है ; किन्तु इस समय वह एक बड़े भारी संकट में पड़ा हुआ है, इस लिये यहाँ नहीं आ सका।”

श्रीपाल ने पूछा :— “ऐसा कौन संकट है, जो इस समय उसे इस प्रकार व्यग्र बना रहा है?”

मन्त्रियों ने कहा, :—“महाराज! यहाँ के राजा का नाम महसेन और रानी का नाम तारासुन्दरी है। इनके तिलकसुन्दरी नामक एक रूपवती पुत्री थी। उसे देखते ही ऐसा मालूम होता था मानों उसे विधाता ने नहीं, किन्तु स्वयं कामदेव ने ही अपने कर कमलों से बनाया है। उसी पुत्री को सर्पने काट खाया है। राजा ने तंत्र-मंत्र और औषधोपचार करने में कोई कसर नहीं रखी ; किन्तु राज-कुमारी को इससे कुछ भी लाभ न पहुँच सका। इसी से वह इस समय बड़े ही चिन्तित और दुःखी हैं।”

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीपाल ने कहा :—"अच्छा, चलो, मुझे उस कुमारी के पास ले चलो। संभव है, कि मैं उसका विष उतार सकूँ।"

इतना कह, श्रीपाल ने उसी समय अपने मन्त्रियों के साथ घोड़ेपर सवार हो, नगर में प्रवेश किया। उस समय राज-कुमारी का अग्निसंस्कार करने के लिये सब लोग श्मशान पहुँच चुके थे। श्रीपालकुमार भी झटपट घोड़े को एड़ी लगाते हुए वहाँ जा पहुँचे। चिता तैयार हो चुकी थी। केवल अग्नि देने भर की देर थी। मन्त्रियों ने तुरन्त वहाँ पहुँच कर राजा से कहा :— "ठहरिये, अभी आग मत दीजिये। हमारे राजा इसे जीवित कर देंगे।"

सब लोग आश्चर्य-पूर्वक श्रीपाल और उनके मन्त्रियों की ओर देखने लगे। श्रीपाल कुमार के आदेशानुसार राज कुमारी को चिता से उतार कर भूमि पर सुला दिया गया। तदनन्तर श्रीपाल ने उस हार को धोकर वही जल उसपर छिड़क दिया। जल के छींटे पड़ते ही राजकुमारी अलसाती हुई उठ बैठी। यह देखकर लोगों को बहुत ही आनन्द हुआ। वे बारंबार हर्षनाद करने लगे; किन्तु राज-कुमारी को यह सब देख कर बड़ा ही आश्चर्य हो रहा था। उसकी समझ में यह बात न आती थी, कि श्मशान भूमि में इतने लोगों के बीच में वह जमीन पर क्यों सो रही थी। उसने उत्कण्ठा पूर्वक अपने पिता की ओर देखा। पिताने कहा :—"बेटी!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

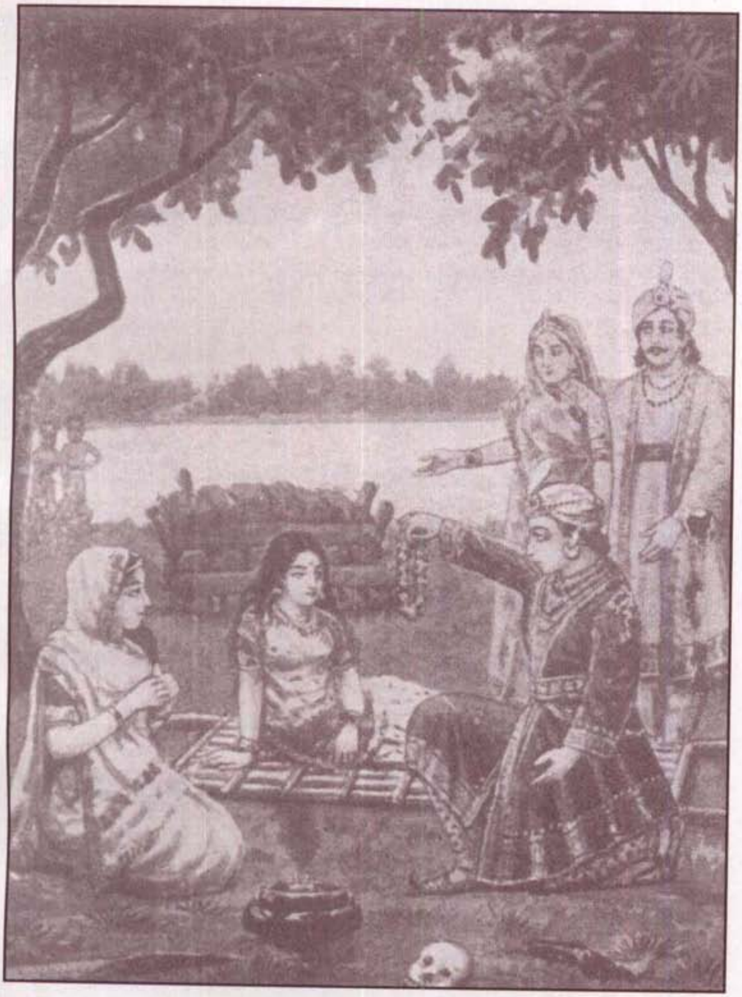

राज-कुमारी अलसाती हुई उठ बैठी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज यदि यह परम प्रतापी पुरुष यहाँ न आ पहुँचे होते, तो अब तक जाने क्या हो गया होता?"

यह कह, राजा ने अपनी पुत्री को सर्प दंश से लेकर श्मशान यात्रा तक का सारा हाल कह सुनाया। अन्त में वे बोले :— "बेटी! तेरे प्राण इन्हीं महापुरुष ने बचाये हैं। इन्हीं की दया से हम तुझे इस समय जीवित देख रहे हैं। अब मेरी आन्तरिक अभिलाषा यह हो रही है, कि इनके इस उपकार के बदले में तेरा विवाह सम्बन्ध भी इन्हीं से कर दूँ।

पिता की यह बात सुन राजकुमारी ने स्नेहभरी दृष्टि से श्रीपाल की ओर देखा। देखते ही वह उनपर अत्यन्त अनुरक्त हो गयी। लज्जा के कारण उसके दोनों कपोल लाल हो गये। राजा ने तुरन्त ही उसका मनोभाव ताड़ लिया। श्रीपाल के चेहरे पर भी प्रेम-भाव झलक रहा था, इसलिये राजा ने अब विलम्ब करना उचित न समझा। उन्होंने उसी दिन बड़े समारोह से श्रीपाल के हाथों में राज-कुमारी का हाथ सौंप दिया।

श्रीपाल कुमार ने अपनी आठों स्त्रियों के साथ कुछ दिन वहीं पर व्यतीत किये। अनन्तर जिस तरह समकितवंत जीव आठ दृष्टियों से युक्त होने पर भी विरति को चाहता है, आठ प्रवचन माता युक्त मुनि जिस तरह समता को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहते हैं और आठ तरह की बुद्धि से युक्त मनुष्य जिस प्रकार सिद्धि को चाहता है, उसी प्रकार श्रीपाल कुमार आठ रानियों से युक्त होने पर भी अपनी प्रथम पत्नी मैनासुन्दरी को चाहने लगे। उससे मिलने और माता को प्रणाम करने के लिये वे लालायित हो रहे थे। इसी लिये और अधिक दिन वहाँ न रहकर उन्होंने स्वदेश की ओर प्रस्थान किया।

रास्ते में अनेक राजाओं से अधीनता स्वीकार कराते और अनेक राजाओं से भेंट-नजर लेते हुए श्रीपाल कुमार एक चक्रवर्ती की भाँति अग्रसर हो रहे थे। उनके साथ बहुत बड़ी सेना थी। अतः वे जिधर ही जा निकलते उधर ही धूम मच जाती। क्रमशः महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, मेवाड़, लाट, भोट आदि अनेक देश के राजाओं को अधीन करते हुए वह मालव देश में जा पहुँचे।

मालवदेश के राजा प्रजापाल ने जब यह समाचार सुना कि कोई राजा युद्ध करने आ रहा है, तब वह भी उज्जयिनी गढ़ में युद्ध की तैयारियाँ करने लगा। अन्न, वस्त्र, जल आदि आवश्यक पदार्थ अधिक-से-अधिक परिमाण में एकत्रित किये गये और नगर के बाहर रहनेवाले लोग भी किले के अन्दर सुरक्षित स्थान में आ बसे। चारों ओर आतंक छा गया। सब लोग युद्ध की आशंका से भयभीत हो रहे थे। इसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समय श्रीपाल कुमार सदल-बल उज्जयिनी आ पहुँचे। राजा को जब यह मालूम हुआ तो उसने तुरन्त किले के फाटक बन्द करा दिये। यह सुन श्रीपाल ने नगर के बाहर ही अपना शिविर स्थापित कर चारों ओर से उज्जयिनी को घेर लिया।

श्रीपाल कुमार ने नगरी को घेर तो लिया, किन्तु उनके हृदय में उसे अधिकृत करने की इच्छा उतनी प्रबल न थी, जितनी अपनी माता और स्त्री से मिलने की थी। इस इच्छा को रोक रखना उनके लिये अब बहुत ही कठिन हो पड़ा। इसलिये वे उसी रात को एक गुप्त-मार्ग से अपने निवास-स्थान में जा पहुँचे, किन्तु किसी को बुलाने या घर में प्रवेश करने के पहले वे कुछ देर के लिये बाहर ही ठहर गये और घरके अन्दर जो बातचीत हो रही थी, उसे सुनने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौदहवाँ परिच्छेद

अपमान का बदला

जिस समय श्रीपाल कुमार अपने निवास स्थान में पहुँचे, उस समय वहाँ दो स्त्रियाँ बातचीत कर रहीं थीं। उनमें एक स्त्री उनकी धर्म-पत्नी और दूसरी माता थी। दोनों में इस प्रकार की बातें हो रही थीं :—

माता ने कहा :— "बहू! इस समय किसी शत्रु ने नगरी को चारों ओर से घेर लिया है। समूचे शहर में हाहाकार मचा हुआ है। सबको यही चिन्ता लगी हुई है, कि न जाने क्या होगा। खैर, मुझे इन सब बातों की फिक्र नहीं है। हम लोगों के पास थोड़ा बहुत जो सामान है, वह भी यदि चला जाय तो मुझे कोई पर्वाह नहीं, किन्तु मेरा जीवन-धन, मेरी आँखों का तारा, वह श्रीपाल जहाँ हो, वहाँ सुखी रहे। जबसे वह विदेश गया, तब से हम लोगों को उसकी कोई खोज-खबर नहीं मिली। उसे देखने के लिये मेरा जी छटपटा रहा है। बिना उसको देखे, अब मुझे अपना जीवन भाररूप मालूम हो रहा है। न जाने अब मैं कौन सा सुख देखने के लिये जी रही हूँ?"

सास की यह बात सुनकर श्रीपाल की स्त्री मैनासुन्दरी ने कहा :— "माताजी! इस प्रकार आप दुःखी क्यों हो रही है? सिद्धचक्र के प्रताप से सब भला ही होगा। आपके पुत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसे देखनेके लिये मेरा जी छटपटा रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजी खुशी घर आयेंगे और शत्रुका यह भय भी दूर हो जायेगा। मालूम होता है कि किसी बुरे ग्रह के कारण इस समय हम लोग संकट भोग रहे हैं। आप नवपद का ध्यान कीजिये, जिससे अपने अनिष्ट दूर हों। नवपद के जाप से जलोदर प्रभृति व्याधियाँ, सब तरह के उपद्रव, बन्धन और भय दूर हो जाते हैं। एवं इहलोक और परलोक में ऋद्धि, सिद्धि तथा सुख-सौभाग्य की प्राप्ति होती है। मेरी धारणा है कि अब हमारे दुःख के दिन पूरे हो गये और सुख के दिन आने में अब अधिक देर नहीं है! माताजी! आज सायंकाल में पूजा के समय मुझे जो अपूर्व भाव और अलौकिक आनन्द की प्राप्ति हुई है, वह अवर्णनीय है। अबतक मेरे मन पर उसका प्रभाव बना हुआ है। मेरी रोमावली रह-रह कर मानो पुलकित हो उठती है। आज मेरी बायीं आँख और बायाँ स्तन भी फड़क रहा है। इससे मेरा मन कह रहा है कि आज कोई शुभ घटना अवश्य घटित होनी चाहिये। संभव है कि आज ही मेरे पतिदेव आ जायें या हम लोगों को उनका आनन्दप्रद समाचार ही मिले।"

माता ने कहाः— "बेटी! ईश्वर करे तेरी बात सत्य प्रमाणित हो। मैंने अनेक बार देखा है कि तू जो कहती है, वही होता है। तेरी जीभ में अमृत है। मुझे तेरी बात का पूर्ण विश्वास है; क्योंकि तेरी बात सिद्ध पुरुष के वचनकी भाँति कभी व्यर्थ नहीं जाती।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माता और स्त्री की यह बातें सुनकर श्रीपाल का हृदय पुलकित हो उठा, उससे अब और अधिक समय तक चुप न रहा गया। वे तुरन्त ही अपनी माता को पुकार उठे। सुनते ही माता ने कहा:— "यह मेरे पुत्र का ही शब्द है। जिन-वचन कभी झूठे नहीं हो सकते।" यह कहती हुई वह उठीं और बड़े प्रेम से द्वार खोले। श्रीपाल ने माता को बड़े ही आदर से प्रणाम किया। मैनासुन्दरी ने भी अपने पति के चरण स्पर्श किये। उन्होंने उसे प्रेम की दृष्टि से देखकर निहाल कर दिया।

साधारण बातचीत के बाद, श्रीपाल कुमार माता को कन्धे और पत्नी को हाथ पर बैठाकर, हार के प्रभाव से आकाश मार्गद्वारा अपने शिविर में आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपनी माता को सिंहासन पर बिठाकर आप उनके सामने आ बैठे। उनकी आठों नव-विवाहिता रानियों ने भी आकर माता और मैनासुन्दरी के चरण स्पर्श किये। माता ने सबों को शुभाशीष दी और मैनासुन्दरी ने मधुर वचनों द्वारा सबका स्वागत किया। अनन्तर श्रीपाल ने माता को समस्त पूर्व वृत्तान्त आद्योपान्त कह सुनाया। अन्त में उन्होंने कहा:—"यह सब गुरुप्रदत्त नवपद के आराधन का ही प्रताप है।" पुत्र की यह बातें सुनकर माता को बहुत ही आनन्द हुआ। उनके जीवन में इससे बढ़कर आनन्द का अवसर शायद ही किसी समय उपस्थित हुआ हो। अस्तु!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब श्रीपाल ने मैनासुन्दरी से कहाः—"प्रिये! मेरी बातों से तुम यह तो जान ही चुकी होगी कि, सिद्धचक्र के प्रताप से उज्जयिनी की हथिया लेना मेरे लिये कुछ भी कठिन नहीं है। तुम्हारें पिता ने अभिमानवश जैनधर्म का अपमान किया था, न केवल धर्म का ही अपमान किया था, बल्कि सच्ची बातें कहने के कारण तुम्हारा जीवन भी दुःखमय बनाने में कोई कसर न रक्खी थी। अब मैं तुम्हारे पिता को उनकी यह भूल दिखा देना चाहता हूँ, कि उन्होंने क्रोधावेश में आकर कैसा अनुचित कार्य किया था; किन्तु फिर भी कर्म की रेख पर वे मेख न मार सके। अब तुम मुझे यह बतलाओ कि उन्हें किस रूप में और किस प्रकार यहाँ उपस्थित होने को बाध्य किया जाय?"

मैनासुन्दरी ने कहाः—"नाथ! आप खुद समझदार हैं। मैं आपको भला क्या बता सकती हूँ। फिर भी यदि आप मेरा अभिप्राय जानना ही चाहते हैं, तो मुझे कहने में कोई आपत्ति नहीं है। मेरी समझ में, पिताजी का अभिमान दूर करना सबसे अधिक आवश्यक है। इसलिये उन्हें कन्धेपर कुल्हाड़ी रख कर नम्रतापूर्वक यहाँ उपस्थित होने को कहना चाहिये। इससे उनका अभिमान दूर हो जायगा, एवं इसके फल स्वरूप न केवल उनका ही कल्याण होगा, बल्कि दूसरों को भी शिक्षा मिलेगी।"

मैनासुन्दरी की यह बात श्रीपालने सहर्ष स्वीकार कर ली। उसी समय उन्होंने एक दूत द्वारा मालवराज को यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्देश कहला भेजा। साथ ही यह भी कहला दिया, कि यदि उन्हें यह स्वीकार न हो तो युद्ध की तैयारी करें।

यथा समय दूत मालवराज की सेवा में उपस्थित हुआ और उन्हें श्रीपाल का सन्देह कह सुनाया। दूत की बात सुनते ही मालवपति के शरीर में मानों आग लग गयी; किन्तु कोई उपाय न था। वे पहले ही सुन चुके थे, कि शत्रु बड़ा प्रबल है। फिर भी वे अपने मन्त्रियों के साथ सलाह करने बैठे। मंत्री चतुर थे, परिस्थिति को वे भली भाँति समझते थे। उन्होंने कहा :— "महाराज! क्रोध करने का यह अवसर नहीं है। शत्रुता और मित्रता समान शक्तिवाले ही से करना उचित है। इस समय हम लोगों को सबल शत्रु से काम पड़ गया है। अतः अवस्था के अनुसार काम न करने से निःसन्देह हमारी ही हार होगी। परमात्मा ने जिसे हम लोगों से श्रेष्ठ बनाया हो, उसके सम्मुख नम्रता प्रकट करना ही हमारा कर्त्तव्य है। दूत की बात हम लोगों को सहर्ष मान लेनी चाहिये। इसमें कुछ भी अनुचित या अपमानजनक नहीं है।"

मन्त्रियों की यह बात सुन, मालवपति राजा प्रजापाल ने दूत की बात मान ली। अब वे कन्धे पर कुल्हाड़ी रख, पैरों से चलते हुए श्रीपाल के शिविर में आ पहुँचे। उन्हें आते देख, श्रीपाल ने आगे बढ़ कर उनकी अभ्यर्थना की। उनसे कुल्हाड़ी रखवा कर, उत्तम वस्त्राभूषण पहना कर उन्हें सभा-मण्डप में ले गये। उसी समय वहाँ मैनासुन्दरी उपस्थित हुई। उसने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कन्धे पर कुल्हाड़ी रख, पैरोंसे चलते हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रजापाल को प्रणाम कर कहा :—"पिताजी! मेरी बातें याद कीजिये। कर्म ही प्रधान है। उसके सामने हम सब लोग किसी हिसाब में नहीं हैं। देखिये, कर्मयोग से मुझे जो पति मिले थे, उन्होंने इस समय अपनी कैसी उन्नति की है।"

इतना कह, मैनासुन्दरी ने राजा प्रजापाल से श्रीपालका परिचय कराया। इस बार उनकी ओर देखते ही प्रजापाल उन्हें पहचान गये। इससे सीमातीत आनन्द हुआ। उन्होंने गद्‌गद होकर कहाः—"कुमार! मैं आपको पहचान न सका। आपने भी गम्भीर और गुणवान होने के कारण स्वयं अपना परिचय न दिया। आपकी यह सब सुख-सम्पत्ति और वीरता देखकर मुझे असीम आनन्द हो रहा है। धन्य है आपको!"

श्रीपाल ने कहा :—"राजन् यह सब नवपद के माहात्म्यका प्रताप है। इसी के प्रसाद से यह सब ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त हुई है, मेरी वीरता के कारण नहीं।"

प्रजापाल ने कहाः— "बड़े लोग अपनी वीरता को कभी भूल कर भी महत्व नहीं देते। इसमें भी कोई सन्देह नहीं, कि इष्टदेव और गुरुकी कृपा से वाञ्छित फल की प्राप्ति भी अवश्य होती है।"

दामाद और ससुर दोनों में इसी तरह की बातें होने लगीं। एक दूसरे की बातों से वे बड़े ही आनन्दित होने लगे। इसी समय समूचे नगर में यह बात विद्युत वेग से फैल गयी, कि उज्जयिनी को घेरा डालनेवाला कोई शत्रु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं; किन्तु प्रजापाल के वही जामाता हैं, जिन्हें कोढ़ी समझ कर उन्होंने मैनासुन्दरी को ब्याह दी थी। प्रजापाल के महल और रनवास में भी यह समाचार पहुँच गया। सुनते ही सौभाग्यसुन्दरी और रूपसुन्दरी प्रभृति रानियाँ तथा अन्यान्य परिजन लोग भी श्रीपाल और मैनासुन्दरी को देखने के लिये शिविर में आ पहुँचे। सभी एक दूसरे से आनन्द पूर्वक मिले जुले। किसी के हृदय में किसी प्रकार का रोष या द्वेष दिखायी न देता था। चारों ओर आनन्द की धारा बह रही थी। सब लोग उसी धारा में बह कर हृदय के कलुषित भावों को तिलांजलि दे रहे थे।

श्रीपाल कुमार ने सब लोगों को उपस्थित देख, उनके आनन्द में वृद्धि करने के लिये एक नाटक खेलने की आज्ञा दी। आज्ञा मिलते ही नाटक की सब चीजें ठीक कर दी गयीं। नाटक के खिलाड़ियों का एक दल रंगमञ्चपर उतरने के लिये तैयार हो गया; किन्तु नाटक के पहले ही दृश्य में जिस नटीका अभिनय था, वह बारंबार कहने पर भी अभिनय के लिये तैयार न हुई। उसने पहले कभी भी ऐसी मनोवृत्ति न दिखायी थी, इस लिये इस समय उसको आना-कानी करते देख, सबको बहुत ही आश्चर्य हुआ। बड़ी देर तक समझाने-बुझाने पर अन्तमें वह खड़ी हुई और साधारण वेश पहन कर रंगमंच पर उपस्थित हुई। इस समय उसके चेहरे पर विषाद की घनघोर घटा छायी हुई थी; किन्तु किसी को इसका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

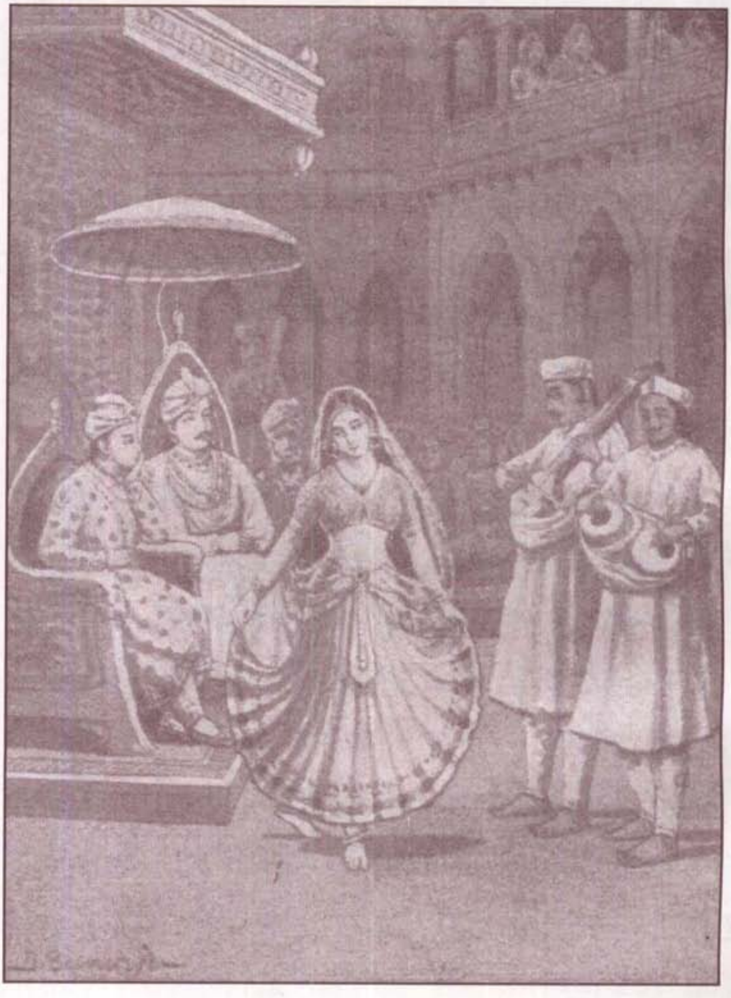

'नाच रही सुरसुन्दरी, विधि अस करत अकाज'।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारण विदित न था। उस नटीने रंग-मंचपर अभिनय आरंभ करने के पहले यह दोहा कहा :—

"कहँ मालव कहँ शंखपुर, कहँ बब्बर कहँ नट्ट।
नाच रही सुरसुन्दरी; विधि अस करत अकाज।।"

नटी के मुँह से यह दोहा सुनते ही राजा प्रजापाल विचार में पड़ गये। वे सोचने लगे, कि सुरसुन्दरी तो मेरी वही पुत्री है, जिसे मैंने शंखपुर के राज-कुमार अरिदमन से व्याह दिया था। वह यहाँ-कहाँ ? पर यह नटी क्या कह रही है? इसके कथन से तो यही सिद्ध होता है, कि यह सुरसुन्दरी ही है। यह विचार आते ही उन्होंने नजर उठा कर उस नटीकी ओर ध्यान-पूर्वक देखा। देखते ही उन्हें मानों काठ मार गया उन्होंने देखा कि वास्तव में वह नटी सुरसुन्दरी ही है। वह भी अपने को अब न रोक सकी। तुरन्त रंगमंच से उतर कर अपनी माता सौभाग्यसुन्दरी के पास पहुँची और उसके गले से लिपट कर सिसक-सिसक कर रोने लगी। उसकी यह अवस्था देख, माता ने उसे बहुत आश्वासन दिया। समझाने-बुझाने पर जब कुछ शान्त हुई, तब उसकी माताने कहा :— "बेटी ! जो होना था, सो हो गया। अब तू यह बता कि तेरी यह अवस्था कैसे हुई ?"

सुरसुन्दरी ने अपनी राम कहानी माता पिता को संक्षेप में सुनाते हुए कहा:— "आप लोगों ने बड़ी धूमधाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से मेरा ब्याह कर मुझे मेरे पति के साथ यहाँ से बिदा किया। हमलोग सकुशल शंखपुर पहुँच गये, किन्तु उस दिन नगर प्रवेश का मुहूर्त्त न मिलने के कारण हम लोग नगर के बाहर ही एक बगीचे में ठहर गये। हम लोगों के साथ काफी आदमी थे; किन्तु उनमें से अधिकांश निश्चिन्त हो, अपने-अपने स्वजन स्नेहियों से मिलने चले गये। हमलोगों ने भी समझा, कि अब कोई खतरा नहीं है, इसलिये उनके जाने में कोई बाधा न दी, किन्तु दुर्भाग्यवश मध्य रात्रि के समय डाकुओं ने हमारे डेरे पर छापा मारा। आपके दामादजी तो प्राण लेकर न जाने कहाँ भाग गये और मैं डाकुओं के हाथ में पड़ गयी। वे मुझे अपने साथ नेपाल ले गये। वहाँ उन्होंने मुझे बेच दिया। जिस मनुष्य ने खरीदा, वह वहाँ से मुझे बब्बरकुल ले गया और वहाँ उसने एक बड़ी रकम लेकर मुझे वेश्या के हाथ बेच दिया। उस वेश्या ने मुझे गाना-बजाना और नृत्य कला सिखाकर नटी बना दिया। वहाँ के राजा महाकाल नाटकों के बड़े ही शौकीन हैं। उन्हीं के यहाँ नटी होकर रहने के लिये मुझे बाध्य होना पड़ा। जब श्रीपालकुमार वहाँ पहुँचे और इनके साथ राज-कुमारी मदनसेना का ब्याह हुआ, तब राजा ने एक नाटक-मण्डली भी दहेज में दी। मैं भी उसी मण्डली में थी।

उसी समय से मैं श्रीपाल कुमार के साथ रहकर नटी की तरह जीवन व्यतीत कर रही हूँ। आज आपलोगों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देखकर मुझसे रहा न गया। मेरा दुख उमड़ पड़ा, इसलिये मैंने अपने आपको प्रकट कर दिया। कर्म-भोग के सिवा इसे मैं और क्या कहूँ! जिस समय मैनासुन्दरीपर मैंने दुःख पड़ते देखा था, उस समय मैं मन-ही-मन प्रसन्न और गर्वित हुई थी; किन्तु आज मुझे उसी मैना-पति का दासत्व अंगीकार करना पड़ा। अभिमान का फल मुझे हाथों-हाथ मिल गया। अब मुझे यह पूर्ण विश्वास हो गया है, कि मैनासुन्दरी हमारे वंश में विजय-पताका के समान है। मैना को जैनधर्म रूपी कल्पवृक्ष के मधुर फल चखने को मिले और मैं मिथ्यावाद रूपी विषवृक्ष के विषैले फल चख रही हूँ। एक ही समुद्र से निकले हुए अमृत और विष में जिस प्रकार जमीन आसमान का अन्तर होता है। उसी प्रकार मुझमें और मैनासुन्दरी में अन्तर है। मैना दोनों कुल के मुख को उज्ज्वल करने वाली मणि-दीपिका के समान है; किन्तु मैं सावन की अँधेरी रात जैसी हीन हूँ। मैना के दर्शन से प्राणियों का कल्याण हो सकता है, मुझे देखकर उन्हें पाप लग सकता है।"

इस प्रकार मैना सुन्दरी की वास्तविक प्रशंसा कर सुरसुन्दरी ने सबके आनन्द में ऐसी बृद्धि की, जैसी नाटक देखने से शायद ही होती है। श्रीपाल और उनकी माता प्रभृति ने सुरसुन्दरी को बहुत आश्वासन दिया। मैनासुन्दरी ने भी उसे गले से लगाकर बहुत ही प्यार किया। अब सुर सुन्दरी नटी का वेश त्यागकर मैनासुन्दरी के साथ रहने लगी। कुछ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिनों के बाद श्रीपाल ने एक दूत भेजकर शंख पुर से अरिदमन को बुला भेजा, और सुरसुन्दरी को उसके हाथों में सौंपकर, उसे विदा किया। अनन्तर श्रीपाल की असीम कृपा से दोनों दम्पत्ति सानन्द जीवन व्यतीत करने लगे।

पाठकों को स्मरण होगा, कि बाल्यावस्था में सात सौ कोढ़ियों ने श्रीपाल की रक्षा की थी। उनको जब इस समय यह मालूम हुआ, कि हमारे राजा उज्जयिनी आये हैं, तब वे लोग भी उज्जयिनी दौड़ आये और श्रीपाल के दर्शन कर बहुत ही प्रसन्न हुए। श्रीपाल ने भी उन सबों को राणा की उपाधि से विभूषित कर उन्हें अपनी सेना का नायक बनाया।

चम्पानगर से आकर मतिसागर मन्त्री ने भी श्रीपाल के सम्मुख सिर झुकाया। उन्होंने पूर्ववत् फिर उसे उसके पदपर नियुक्त कर दिया। इसीप्रकार अनेक स्वजन-स्नेही उनके पास आये। सबों की समुचित अभ्यर्थना कर उन्हें अपने यहाँ आश्रय प्रदान किया। सब लोग उनकी छत्रछाया में रहकर सानन्द जीवन व्यतीत करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

युद्ध में विजय

इस समय श्रीपाल के दिन बड़े ही आनन्द में व्यतीत हो रहे थे। उन्हें अब कोई कष्ट न था। एक ओर उनके पास जैसी अपार सम्मत्ति थी, दूसरी ओर वैसी ही सेना और राजसी ठाठ-बाट था। सिर्फ कमी उन्हें एक ही बात की थी और वह यह थी, कि उनके पिता का राज्य अब तक उनके अधिकार में नहीं आया था। इसी सम्बन्ध में एक दिन उनसे मतिसागर मन्त्री ने कहा:— "कुमार! तुम्हें यह तो मालूम ही है, कि मैंने तुम्हें तुम्हारे पिता के राज-सिंहासन पर आसीन कराया था; किन्तु तुम्हारे काका अजीतसेन ने तुम्हारी बाल्यावस्था से लाभ उठाते हुए तुम्हारा राज्य अधिकृत कर लिया था। अब तुम्हें वह राज्य पुनः प्राप्त करना चाहिये। बल होने पर भी यदि पिता का राज्य प्राप्त न किया जा सके, तो बल बेकार है। यदि तुम अपने पिता का राज्य नहीं ले सकते तो फिर यह सेना और यह साज-सम्मान किस लिये? मेरी राय है, कि हम लोगों को भीतर-ही-भीतर तैयारी कर अचानक आक्रमण कर देना चाहिये। इससे अनायास ही वह राज्य हमारे हाथों में आ सकता है।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्त्री की यह बात श्रीपाल के मन में जँच गयी। उन्होंने कहा :— "तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। मुझे अपने पिता का राज्य हस्तगत करना ही चाहिये; किन्तु मेरा कहना यह है कि यदि साम से काम निकलता हो, तो दण्ड-नीति से काम क्यों लिया जाय? यदि गुड़ देने से ही काम निकलता हो, तो विष क्यों दिया जाय?"

मन्त्री ने कहा :— "अच्छा, ऐसा ही किया जाये। पहले अजीतसेन के पास एक दूत भेजकर उसे अच्छी तरह समझा दिया जाये। अनन्तर यदि वह समझबूझ कर अपने आप ही राज्य लौटा दे, तो युद्ध का कोई झमेला न किया जाये।"

श्रीपाल ने कहा:— "हाँ, मेरी भी यही राय है, वैसे ही कीजिये।"

मन्त्री और श्रीपाल की इस सलाह के अनुसार चतुर्मुख नामक एक चतुर दूत, उसी दिन चम्पानगरी की ओर भेज दिया गया। वह यथा समय चम्पानगरी पहुँचा। वहाँ पहुँचने पर अजीतसेन की सभा में उपस्थित हुआ। अजीतसेन ने उसे बैठने के लिये समुचित आसन दिया। दूत से जब उसके आगमन का कारण पूछा गया, तब उसने अजीतसेन से कहा:— "राजन्! आपने श्रीपाल कुमार को बालक समझकर बाल्यावस्था में विद्या और कलाओं का सम्पादन करने के लिये विदेश भेजा था, सो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब उन्होंने सब विद्या और कलाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। उन्होंने चतुरंगिणी सेना भी एकत्रित कर ली है। अब वे आपके शिर से राज्य-भार उतारना चाहते हैं। आपकी भी उम्र बड़ी हो चली है। ऐसी अवस्था में आपको स्वयं समझबूझ कर राज्य-भार से मुक्त हो जाना चाहिये। मैं समझता हूँ कि श्रीपाल का प्रताप आपसे छिपा न होगा। इस समय अनेक राजे महाराजे उनके अधीन हैं और अनेक उनके आश्रय में रहते हैं। आपको भी उनका अनुकरण करना चाहिये था। आपने वैसा न कर उनसे विरोध खड़ा किया है; किन्तु वह अनायास ही विरोध को दूर कर सकते है; क्योंकि आपमें और उनमें बड़ा ही अन्तर है। कहाँ राई और कहाँ पर्वत? कहाँ तारा और कहाँ शरद्‌चन्द्र? कहाँ खद्योत और कहाँ सूर्य? कहाँ मृग शावक और कहाँ पंचानन सिंह? कहाँ हिंसा-युक्त यज्ञ और कहाँ दया प्रधान जैनधर्म? कहाँ झूठ और कहाँ सत्य? कहाँ काँच और कहाँ रत्न? इन सबों में उत्तम वस्तुओं के स्थान में श्रीपाल और नीच वस्तुओं के स्थान में आपकी गणना की जा सकती है। आपमें और उनमें सचमुच ऐसा ही अन्तर है। मैं आपसे यही निवेदन करना चाहता हूँ, कि यदि आपको अपने प्राणों की ममता हो, तो अहंकार छोड़कर, उनके पास चलिये और उनका राज्य उनके हाथों में सौंपकर अपने कर्तव्य का पालन कीजिये। अन्यथा युद्ध के लिये तैयार हो जाइये; किन्तु यह भी स्मरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहे, कि उनकी अपार सेना के सम्मुख आपकी सेना किसी हिसाब में नहीं है। आप किसी तरह उनका मुकाबला नहीं कर सकते। निर्बल होकर बलवान से युद्ध करना जान-बूझकर ही संसार में अपनी हंसी कराना है। यदि आप मेरी बातों पर ध्यान न देंगे और श्रीपाल से युद्ध करने की तैयारी करेंगे, तो निःसंदेह संसार आपके ऊपर हँसेगा। फिर जैसी आपकी इच्छा।"

दूत की यह बातें सुनकर राजा अजीतसेन मारे क्रोध के आगबबूला हो गये। उनके शिर पर मानो भूत सवार हो गया। उन्होंने गरज कर कहा :— "हे दूत! तू अपने स्वामी के पास जाकर उनसे कह दे, कि चम्पानगरी का राज्य इतनी आसानी से नहीं मिल सकता। जिस प्रकार भोजन में मधुर, अम्ल, और कटु किंवा तिक्त स्वाद के पदार्थ आदि मध्य और अन्त में उपस्थित किये जाते हैं, उसी तरह तूने सभी तरह की बातें मेरे सामने कही हैं। तेरे इस गुण के कारण शायद तेरा नाम चतुर्मुख पड़ा है। तूने कहा है कि श्रीपाल को बालक समझकर कला-कुशलता प्राप्त करने के लिये मैंने उसे विदेश भेजा था; किन्तु यह सत्य नहीं है। मैं उसे अपना मानता ही नहीं, बल्कि अपना शत्रु समझता हूँ। केवल बालक समझ कर ही मैंने उसे जीता छोड़ दिया था। सम्भव है कि इस समय वह बलवान हो गया हो, किन्तु मैं उससे निर्बल नहीं हूँ। मैं समझता हूँ कि श्रीपाल पर अब यमराज ने नजर लगायी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसीलिये उसने सोते हुए सिंह को जगाने का दुःसाहस किया है। उससे कह देना, कि यदि वह मुझे छोड़ देगा, तो उसकी इज्जत बचनी कठिन हो जायेगी। तू अपने राजा की सेना को बहुत बड़ी बतलाता है, किन्तु वह दूसरों के लिये बड़ी होगी। मैं अकेला ही उसके सैन्य सागर में वड़वानल की तरह काम करूँगा। अपने राजा से कहना, कि बलकी परीक्षा बातों से नहीं हुआ करती। कौन बलवान और कौन निर्बल है यह युद्ध-क्षेत्र में आप ही सिद्ध हो जायेगा। तेरे राजा ने रण के लिये जो निमन्त्रण भेजा है, उसे मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ।"

राजा अजीतसेन का यह उत्तर लेकर चतुर्मुख उसी समय उज्जैन के लिये चल पड़ा। वहाँ पहुँचने पर उसने श्रीपाल से सब बातें कह सुनायीं। सुनते ही श्रीपाल को क्रोध आ गया। उसी समय वह सेना को सुसज्जित कर चम्पानगरी के समीप पहुँचे। वहाँ नदी के तटपर एक उपयुक्त स्थान देखकर शिविर की स्थापना की। अजीतसेन को यह समाचार पहले ही से मिल चुके थे, इसलिये वह भी अपनी सेना लेकर श्रीपाल के सामने आ डटे।

लड़ाई करने के पहले अनेक प्रकार के मंगलाचार किये गये। जब लड़ाईका समय हुआ तब चारों ओर रण-भेरियाँ बज उठीं। सैनिकों ने शस्त्रों की पूजा की। भाट-चारणों ने बिरदावली गा-गाकर उनको मरने मारने के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिये उत्साहित किया। चारों ओर वीरता और उत्साह का मानों समुद्र उमड़ रहा था। दोनों ओर की सेनायें युद्ध के लिये प्रस्तुत हो गयीं। सूर्य भी तिमिर शशि का निकन्दन करने के लिये रुद्र रूप धारण कर इसी समय पूर्व ओर उदयाचल पर आ डटे।

बस, अब सेनापति का आदेश मिलने भर की ही देर थी। दोनों ओर रण-स्तम्भ रोपित हो जानेपर सेनापति ने शंख-ध्वनि कर युद्ध करने की आज्ञा दे दी। आज्ञा मिलते ही पैदल से पैदल और घुड़सवारों से घुड़सवार भिड़ गये। वर्षा की भाँति बाण-वृष्टि होने लगी। आकाश में ध्वजायें फरकने लगीं। बिजली की तरह तलवारें चमकने लगीं और सैनिकों की हुंकार से सारा आकाश गूँज उठा। किसी-किसी समय ऐसा मालूम होता था, मानों वर्षा ऋतु आ गयी है। भयंकर और विशाल तोपों की गोलाबारी के समय जो गर्जना होती थी, वह मेघ गर्जना का भास कराती थी। गोला, जमीनपर गिरते ही अनेक शत्रुओं का काम तमाम कर देता था। कहीं कोई शत्रु का शिर उड़ाये देता था, तो कोई शत्रु के बाणों का प्रतिकार करता था। कोई मदोन्मत्त हाथियों के गण्डस्थल छेद रहा था, तो कोई अपने वीर नाद से शत्रुओं को आतंकित कर रहा था। चारण लोग इस समय भी बिरदावली सुना-सुना कर शूर-वीरों को उत्साहित कर रहे थे। इस समय जुझाऊ बाजे अन्ततक लड़ने के लिये नवजीवन का संचार कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहे थे। यह सब देख सुनकर श्रीपाल के सैनिक मानों मदोन्मत्त होकर झूमने लगे।

सेनापति ने उचित अवसर देखकर सैनिकों को शत्रुदल में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी। आज्ञा मिलते ही सब उसी ओर पिल पड़े। देखते-ही-देखते न जाने उन्होंने कितनों के शिर उड़ा दिये और न जाने कितने घोड़े-हाथी और रथों का सर्वनाश कर डाला। श्रीपाल के सैनिकों की इस मार से अजीतसेन की सेना में भगदड़ मच गयी। अजीतसेन अब तक दूर ही से सब रंग देख रहा था। जब उसने देखा, कि उसकी सेना में विश्रृंखलता उत्पन्न हो गयी, तब वह स्वयं अपने सैनिकों को उत्साहित करता हुआ युद्धक्षेत्र में कूद पड़ा। उसने अपने वीरों को ललकार कर कहा, कि उनके लिये नमक अदा करने का युद्ध में प्राण देकर अपने स्वामी की लाज बचाने का यही पहला वीरोचित अवसर है।

इधर श्रीपालकुमार के सात सौ सेनानायकों ने जब देखा, कि अजीतसेन स्वयं रणक्षेत्र में उपस्थित हुआ है, तब उन्होंने चारों ओर से उसे घेर लिया और जब वह भली-भाँति उनके चक्र में फँस गया, तब उन्होंने कहा:— "राजन्! अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। यदि इस समय भी आप अहंकार छोड़कर कुमार की अधीनता स्वीकार कर लें, तो वे आपको क्षमा कर देंगे।" किन्तु अजीतसेन पर इन शब्दों का कोई प्रभाव न पड़ा, बल्कि वह और जोर से उन सेनानायकों पर शस्त्रास्त्र के वार करने लगा। सेनानायकों ने भी उसकी यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवस्था देखकर उसकी मुश्कें कस लीं। जब यह संवाद फैल गया तो चारों ओर श्रीपाल की जय-जयकार होने लगा।

उसी समय सैनिक लोग अजीतसेन को बाँध कर श्रीपाल के पास ले आये। उन्होंने देखते ही उनके बन्धन छुड़ा दिये। पश्चात् समुचित आसनपर उन्हें बैठा कर कहाः— "पूज्य काकाजी! आप अपने मन में लेश मात्र भी खेद न करें। आप आनन्द-पूर्वक राज कीजिये। मुझे राज्य की आवश्यकता नहीं है।"

श्रीपाल कुमार के इन वचनों को श्रवण कर राजा अजीतसेन के विचारों में बड़ा ही अन्तर आ गया। वे अपने मन में सोच रहे थे, कि मैंने दूत की बात न मानी, इसलिये मेरी प्रतिष्ठा नष्ट हो गयी। अपनी शक्ति का विचार किये बिना जो लोग बलवान से मुकाबला करने दौड़ते हैं और अपने हित की बात नहीं सुनते, उन्हें मेरी तरह आपत्ति में ही पड़ना पड़ता है। कहाँ मैं वृद्ध होने पर भी परद्रोह करनेवाला--पराया राज्य हजम कर जाने वाला पापी और कहाँ बाल्यावस्था से ही परोपकार परायण यह पुण्यवान् श्रीपाल! मुझमें और इसमें जमीन आसमान का अन्तर है। गोत्र-द्रोह करने से कीर्ति का नाश होता है। राज-द्रोह करने से नीति का नाश होता है और बाल-द्रोह करने से सद्गति का नाश होता है, मैंने यह तीनों द्रोह किये हैं, इसलिये मुझे तीनों प्रकार का भय है। संसार में जिस पापको कोई नहीं करता, उसे मैंने किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, अतः नरक के सिवा मेरे लिये दूसरा स्थान ही नहीं है जो इन पापों से मुक्ति दिला सके? हैं, अवश्य ही है। जिनराज की प्रवज्या ग्रहण करने से ऐसे पापों से मुक्ति मिल सकती है, एवं उससे आत्मा का कर्म-मल दूर होकर वह भी शुद्ध हो सकती है। वह प्रवज्या दुःख रूपी बल्लरियों के वन को दहन करने के लिये दावानल के समान है। शिव-सुख रूप वृक्ष के मूल के समान है, गुण-समूह का आगार है, सब प्रकार की आपत्तियाँ उससे दूर हो सकती हैं। मोक्ष सुख के लिये वही आकर्षण है, भव-भय के लिये वही निकर्षण है, कषायरूप पर्वत को भेदने के लिये वही वज्र है और नव कषाय रूप दावानल को प्रशमित करने के लिये मेघ के समान है।

अजीतसेन के मन में इस प्रकार के उत्तम विचार उत्पन्न होने पर वे प्रवज्या के गुण ग्रहण करने एवं संसार के दोष समझने लगे। इससे मोह-मदिरा द्वारा चढ़ा हुआ उन्माद नष्ट होकर शुभ भावनायें अंकुरित होने लगीं। इस प्रकार मनोभावना के परिवर्तित हो जाने से पाप स्थिति नष्ट हो गयी और कर्म ने सहायता पहुँचायी; इसलिये तुरन्त ही राजा अजीतसेन को अपने पूर्व जन्म की स्मृति हो आयी।

अन्त में उन्होंने उसी क्षण श्रीपाल के सम्मुख गार्हस्थ्य का त्याग कर चारित्र अंगीकार कर लिया। राजा अजीतसेन को इस प्रकार चारित्र सहित देखकर श्रीपाल कुमार को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वे उसी समय सपरिवार उन्हें वन्दन कर इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगेः— "हे मुनीश्वर! आपने उपशम रूपी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तलवार से क्रोध को निर्मूल कर दिया है। मृदुता—निरभिमानता रूपी वज्र से मद-अहंकार रूपो पर्वतों का चूर्णकर डाला है। सरलतारूपी कुदालों से माया की विष-वल्लरीको जड़मूल से नष्ट कर दिया है और निर्लोभ रूपी नौका द्वारा महान लोभसागर को पार करने में आपने सफलता प्राप्त की है। भवरूपी वृक्ष के मूल रूपी इन चार कषायों का आपने निकन्दन कर डाला है। साथ ही सुरासुर और मनुष्य मात्र को अहंकार रूप बलसे जीतने वाले कामदेवको भी आपने अपने पराक्रम से न केवल पराजित ही किया है, बल्कि उसे वश कर लिया है, किन्तु इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्यों कि जिस सिंह की गर्जना सुनकर हाथियों का भी चिंघाड़ना बन्द हो जाता है, वह सिंह भी अष्टापद के सामने बकरे की तरह दीन हो जाता है। आपने रति और अरति का निवारण किया है। भय को तो आपने अपने हृदय में स्थान ही नही दिया है। आपने बुरी इच्छाओं का भी त्याग किया है। पुद्गल और आत्मा को विनाशी एवं अविनाशी समझकर आपने अपने हृदय में उन्हें भिन्न-भिन्न स्थान दिया है, इसलिये आपको किसी वस्तु की इच्छा ही नहीं होती, क्योंकि पुद्गल नाशवान होने के कारण उसकी इच्छा ही करना व्यर्थ है और जो आत्मा अविनाशी है वह तो आपके पास ही है।

परिषह की सेना आपसे युद्ध करने आयी थी, किन्तु मनोन्मत्त हाथी जिस प्रकार अकेला ही सबका सामना करता है, उसी प्रकार अकेले आपने ही उससे युद्ध कर उसे भगा दिया। इसके अतिरिक्त उपसर्गों ने आपके मोक्ष-मार्ग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में बाधायें उपस्थित कीं, किन्तु आप शरीर की भी स्पृहा नहीं रखते, इसलिये वे आपको अपने भयंकर जाल में उलझा न सके।

हे स्वामिन्! आपको मोक्ष-मार्ग में अग्रसर होते समय राग-द्वेष नामक दो प्रबल चोर मिले। उन्हें आपने धैर्य रूपी वज्र से इस प्रकार मार गिराया, जिससे वे फिर आपकी ओर आँख उठाकर देखने की भी हिम्मत न कर सके। अनन्तर इस संसार-सागर को पार करने के लिये मार्ग खोज करने पर आपको अनेक मार्ग दिखायी दिये; क्योंकि जीवके जितने भेद हैं, उतने ही संसार-सागर के मार्ग होने के कारण ऐसा होना स्वाभाविक था। अतः आपने उन मार्गों से सरल मार्ग खोज निकालने के लिये, समता नामक योगनालिकासे देखना आरम्भ किया। इससे चित्त के अध्यवसाय की स्थिरता एवं मन, वचन और कार्य की एकाग्रता होने पर आपको अनेक मार्ग दिखायी दिये; किन्तु उनसे सिद्ध स्थान तक पहुँचना आपको असम्भव प्रतीत हुआ। अतएव आपने और भी सूक्ष्म दृष्टि से मार्गों का निरीक्षण किया। इस बार आपको उदासीनता नामक एक पगडण्डी दिखायी दी। वह भव-चक्र के भय से रहित थी, इसलिये आपने मन-वचन और काया की स्थिरता पूर्वक उसी पर चलना आरम्भ किया। आप बाह्य और आभ्यन्तरिक सब प्रकार के विकारों से रहित होने से एवं क्षमादि गुणों से युक्त होने से आपके इस मार्ग में कोई बाधा न दे सका। भिन्न-भिन्न नय-सम्मत भिन्न-भिन्न मार्ग आपको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिखायी दिये; किन्तु आपने सर्व नय सम्मत वीतराग परमात्मा का ही मार्ग ग्रहण किया और निश्चय-नय के पक्षपाती बनकर कर्म लेप रहित हुए हैं, अतएव आप मोक्ष मार्ग के पूर्ण अधिकारी बने हैं।

हे स्वामिन्! आपकी अनुभव शक्ति जागरित हो चुकी है अतएव आप अनुभवी योगी हैं। आप अपने अकषायी, अवेदी, अलेशी, अयोगी और अतीन्द्रिय प्रभृति गुणों के भोगी हैं। आप धर्म-संन्यासी* हैं; तत्त्व मार्ग के प्रकाशक हैं, विभाग दशा को छोड़कर स्वभाव दशा में रमण करने के कारण आत्मदर्शी हैं और कषाय का त्याग कर उपशम रस बरसाने वाले होने के कारण उपशमवर्शी है। इस उपशम रस की वर्षा से आपने अपने गुणरूपी उद्यान को सींचकर उसे बहुत ही परिपुष्ट बनाया है।

मुनिराज छठे और सातवें गुणठाणों में निवास करते हैं। इस दोनों गुणठाणों की भिन्न-भिन्न स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और एकत्रित उत्कृष्ट स्थिति, देश से कुछ कम क्रोड़ पूर्व की हैं; किन्तु आप तो उन दो में से सातवें गुणठाणे में ही निवास करते हैं। यद्यपि संसार के क्रमानुसार आपको छठे प्रमत्त गुणठाने में जाना पड़ता है, किन्तु वहाँ आप लघु अन्तर्मुहूत्त◆ ही स्थिति करते हैं और अप्रमत्त गुणठाणे में उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त

* चौथे गुणठाणासे धर्म-साधु संन्यासी कहलाते हैं।

◆ लघु अन्तर्मुहूर्त आठ-नव समय का और उत्कृष्ट अन्त मुहूर्त्त दो घड़ी में एक समय कम का कहलाता है। स्तुति के कारण ही यहाँ ऐसा कहा गया है। वास्तव में जीव अधिकांश समय छठे गुणठाणे मे ही रहता है। सातवें गुणठाणे में बहुत ही अल्प समय रहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थिति करते हैं। आपका रूप किसी को गम्यमान न होने के कारण आप अगम्य हैं। आपके अध्यवसाय चर्म-चक्षुओं से गोचर नहीं हो सकते अतएव आप अगोचर हैं। आप पाँचों इन्द्रियों को दमन कर सकते हैं और तृष्णा रूपी तृषा तो मानो आपको स्पर्श ही नहीं कर पाती। हे मुनिराज! आपकी बाह्य और अभ्यन्तर दोनों प्रकार की मुद्रा परम सुन्दर है। ऊपर से आपकी आकृति बड़ी ही सुन्दर है, और गुणों के कारण अभ्यन्तर आकृति भी वैसी ही परम रमणीय है। गुणों के कारण आपकी तुलना इन्द्र के साथ की जा सकती है। आपकी बाह्य लीला आपके अभ्यन्तर की उपशम लीला को सूचित करती है; क्योंकि जब किसी वृक्ष के भीतर में अग्नि प्रज्वलित होता रहता है, तब वह बाहर से हरा-भरा नहीं दिखायी देता।

हे मुनिराज! आप वैरागी अर्थात् राग रहित हैं, त्यागी अर्थात् बाह्य ▽और अभ्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग करनेवाले हैं। आप पूर्ण भाग्यशाली हैं। आपकी कुमति नष्ट हो गयी है और शुभमति जागरित हुई है। आप भव-बन्धन से मुक्ति हो गये हैं। काका होने के कारण आप पहले से ही मेरे पूज्य थे, किन्तु अब आप समस्त संसार के पूज्य हो गये हैं। मैं पहले भी आपको वन्दन करता था, किन्तु अब

▽ बाह्य परिग्रह का तात्पर्य स्त्री, पुत्र तथा धन-धान्य से और अभ्यन्तर परिग्रह का तात्पर्य विषय-कषायादिसे है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप उपशम के आगार मुनि महाराज हो गये हैं, अतएव आपको बारंबार वन्दन करता हूँ।"

इस प्रकार मुनिराज अजीतसेन की स्तुति करने के बाद श्रीपाल ने अपने पिता का राज्य छोड़कर शेष समस्त राज्य का उत्तराधिकारी अजीतसेन के पुत्र गजगति को नियुक्त किया। इस तरह पुण्यबल से श्रीपाल ने नाना प्रकार से स्वकार्य की सिद्धि की और स्वजन-स्नेही तथा सज्जनों को सुखी किया। अनन्तर उन्होंने चम्पानगरी में प्रवेश किया। उस समय प्रजा ने समूची नगरी को उत्तमता-पूर्वक सजाया था। चारों ओर ध्वजा-पताकाएं लहरा रही थीं। रास्ते में छाया करने के लिये वस्त्र बाँध दिये गये थे। स्थान-स्थान पर नाटकों का अभिनय हो रहा था। रम्भा जैसी सुन्दरियाँ मंगलगान गा रही थीं। आज चम्पानगरी के सामने सुरपुरी भी फीकी मालूम हो रही थी। दूसरी ओर श्रीपाल कुमार अपने ऐश्वर्य और बल-विक्रम के कारण इन्द्र से भी बढ़े चढ़े मालूम होते थे।

जिस समय चम्पानगरी के रास्तों पर श्रीपाल की शानदार सवारी निकली, उस समय चारों ओर आनन्द और उत्साह की लहरें उठ रही थीं। रास्ते में स्थान-स्थान पर स्त्री-पुरुष मोतियों से थाल भर-भरकर श्रीपाल की अभ्यर्थना करते रहते थे। उस समय स्त्रियों के कंकण, नेपुर और कटि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

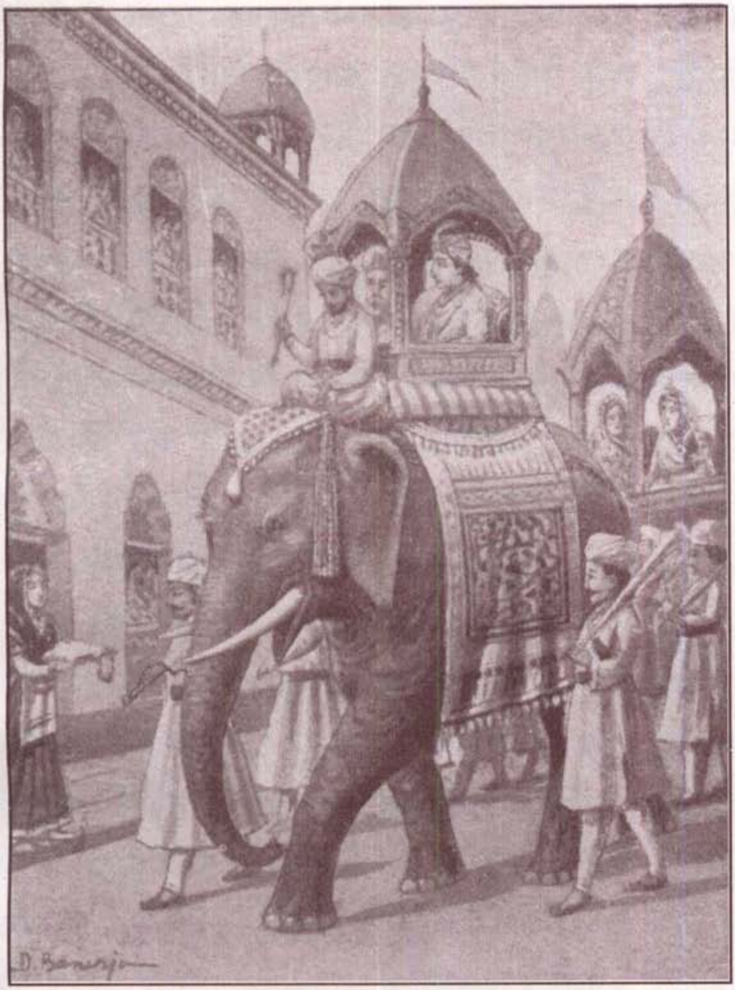

मोतियोंसे थाल भर-भरकर श्रीपालकी अभ्यर्थना करते थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेखलाओं की झनकार ऐसी मधुर प्रतीत हो रही थीं, मानो सुरीले बाजों की मधुर झनकार हो रही थी।

चम्पानगरी में प्रवेश करनेपर सब राजाओं ने श्रीपाल को उनके पिता के सिंहासन पर आरूढ़ कराया। पटरानी के स्थानपर मैनासुन्दरी का अभिषेक हुआ। शेष आठ रानियाँ उससे नीचे स्थान पर रखी गयीं। मतिसागर प्रधान मन्त्री और धवल के तीनों मित्र उपमन्त्री नियुक्त हुए। अभिषेक और नियुक्तियों का यह समारोह बड़े ही आनन्द से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर श्रीपाल ने याचकों को मुक्त हस्तसे दान दिया और स्वजन स्नेहियों को उपहार प्रदान किया। समारोह पूर्ण होने पर श्रीपाल कुमार न्याय और नीति पूर्वक प्रजा का पालन करने लगे।

यह सब हो जाने पर भी श्रीपाल कुमार अभी धवल सेठ को भूले न थे। उन्होंने कौसम्बी नगरी में उसके उत्तराधिकारियों की खोज करायी और वहाँ से उसके पुत्र विमलको अपने पास बुला भेजा। विमल यथा नाम तथा गुण था—अर्थात् वास्तव में वह विमल ही था। उसके चरित्र और गुणों की भली-भाँति परीक्षा करने के बाद श्रीपाल ने उसे चम्पानगरी में ही रख लिया और उसे नगर सेठ की उपाधि से विभूषित कर विपुल सम्पत्ति का स्वामी बनाया। अनन्तर श्रीपाल कुमार ने प्रत्येक मन्दिर में अट्ठाई महोत्सव कराये और स्वयं सिद्धचक्र की पूजा-भक्ति विशेष रूप से करने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगे; क्यों कि उन्हें जो कुछ सुख-सम्पत्ति प्राप्त हुई थी, उसे वे उसी का प्रताप मानते थे। यह एक साधारण नियम है, कि घर में बड़े लोग जो कार्य करते हैं, छोटे लोग अनायास उसका अनुकरण कर वही कार्य करने लगते हैं, अतएव इस समय श्रीपाल कुमार के कुटुम्ब में जितने मनुष्य थे, वे सभी सिद्धचक्र की पूजा भक्ति करने लगे। कुछ समय के बाद श्रीपाल ने अनेक गगनस्पर्शी मन्दिर बनवाये। जिनकी ऊँची ध्वजाये मानों चन्द्रमण्डल का अमृत पान कर रही थीं। साथ ही उन्होंने समूचे राज्य में अमारीपडह बजवाया। न्याय भी ऐसा करते थे, कि लोग राजा रामचन्द्र से उनकी तुलना करने लगे। दान-पुण्य के कारण चारों ओर उनकी इतनी कीर्ति फैल रही थी, कि सब लोग दानवीर कर्ण के नाम को भूल कर प्रातःकाल उन्हीं का नाम लेने लगे। एवं उन्हें कल्पवृक्ष के समान समझने लगे। यह ठीक भी था; क्योंकि कभी किसी को उनके पास से खाली हाथ न लौटना पड़ता था। उनके गुण और उनकी कीर्ति के सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त है कि वे अवर्णनीय थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोलहवाँ परिच्छेद

अजीतसेन मुनिका धर्मोपदेश

कालान्तर में चारित्र की वृद्धि होने पर अजीतसेन राजर्षि को अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। वे घूमते-घूमते एक समय चम्पानगरी में आ पहुँचे। उनके आगमन का समाचार सुनते ही राजा श्रीपाल अपनी माता और स्त्रियों को साथ ले, बड़ी धूम-धाम से उनको वन्दन करने गये। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने तीन प्रदक्षिणा देकर मुनिराज को तीन बार वन्दन किया। अन्यान्य लोगों ने भी उनका अनुकरण किया। पश्चात् धर्मोपदेश सुनने की इच्छा से सब लोग उनके सामने समुचित स्थान पर बैठ गये। अनन्तर राजा श्रीपाल के अनुरोध करने पर अजीतसेन मुनि ने धर्मोपदेश देना आरम्भ किया।

हे भव्य प्राणियो! तुम लोग जिनराज के वचन श्रवण कर उन्हें हृदय में धारण करो और मोह को सर्वथा त्याग कर दो। बिना मोह त्याग किये सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। जो लोग मोह-जाल में पड़े रहते हैं, वे भव-चक्र में ही सदा फेरे लगाया करते हैं। जब उनका मोह दूर होता है, तब कहीं वे उन्नत अवस्था को प्राप्त करते हैं।

इस संसार में मनुष्य जन्म दस दृष्टान्तों से दुर्लभ है। जब अनन्त पुण्यराशि एकत्रित होती है, तभी यह जन्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलता है। मनुष्य जन्म भी यदि अनार्य देश में हुआ, तो निरर्थक ही समझना चाहिये; क्योंकि वहाँ कोई धर्म का नाम भी नहीं लेता। ऐसे स्थानों में मनुष्य पाप कर्म में प्रवृत्त होता है और संसार में आसक्त होकर जीवन व्यतीत करता हुआ, वह तिर्यंच नरकादि अधोगति को प्राप्त करता है। वहाँ से फिर ऊँचे उठना उसके लिये बहुत ही कठिन हो पड़ता है। पूर्व जन्म में जिनके सुकृत्य बहुत ही प्रबल होते हैं, उन्हीं को इस आर्य देश में जन्म मिलता है। आर्य देश में जन्म होने पर भी उत्तम कुल की प्राप्ति होनी कठिन है। हीन या म्लेच्छ कुल में जन्म होने पर मनुष्य को आर्य क्षेत्र की प्राप्ति से कोई लाभ नहीं होता; क्योंकि म्लेच्छ जाति में हिंसादि पाप-कर्म कर वह पुनः अधोगति को प्राप्त होता है।

आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल और मनुष्य जन्म मिलने पर भी यदि रूप, आरोग्य और दीर्घायुष्य प्राप्त नहीं हुए, तो आर्य क्षेत्रादि की प्राप्ति निष्फल हो जाती है। रूप से उज्ज्वल वर्ण का तात्पर्य नहीं है। पाँच इन्द्रियों की सम्पूर्णता ही रूप है। यदि पाँच इन्द्रियाँ पूर्ण न हों—उनमें से नाक, कान, आँख या जीभ प्रभृत्ति में कोई दोष हो; यानी मनुष्य अंधा, काना, बहरा या गूंगा हो तो उसे यथोचित धर्म की प्राप्ति नहीं होती। शरीर के सब अवयव ठीक होने पर भी यदि वह व्याधिग्रस्त रहता है, तो धर्म की आराधना नहीं कर सकता। इसी प्रकार यदि वह अल्पायुषी होता है—छोटी उम्र में ही अपनी इहलोक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लीला समाप्त कर देता है, तो आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल, संपूर्ण पञ्चेन्द्रियाँ और आरोग्य यह कोई भी उसे काम नहीं आते। उस अवस्था में, वह केवल मनुष्य का नाम धारण कर इस असार संसार से प्रस्थान कर जाता है।

आर्य-क्षेत्र, उत्तम कुल, आरोग्यता, दीर्घायुष्य प्रभृति मिलने पर भी सद्‌गुरु की प्राप्ति होनी कठिन है। युगलियों के क्षेत्र में सद्‌गुरु की प्राप्ति होती ही नहीं। कर्म-भूमि आर्य देश में भी बड़ी कठिनाई से सद्‌गुरु मिलते हैं। पूर्व जन्म के शुभ कर्म प्रबल होनेपर ही सद्‌गुरु की प्राप्ति होती है। यदि पुण्य-योग से सद्‌गुरु की प्राप्ति होती भी है, तो उनसे लाभ ग्रहण करते, तेरह काठिये बाधा देते हैं; जिससे सद्‌गुरु का लाभ होना कठिन हो पड़ता है। यदि तेरह काठियाओं को दूर कर मनुष्य गुरु के पास जाता है और उनके दर्शन करता है, तो मिथ्यामति होने के कारण उनकी सेवा-भक्ति नहीं कर पाता। यदि पुण्य-संयोग से गुरुसेवा करने की इच्छा कर उनके समीप बैठता है तो धर्मोपदेश सुनना कठिन हो जाता है ; क्योंकि उसके इस कार्य में निद्रा प्रभृति प्रमाद बाधा देते हैं। यदि पुण्य संयोग से वह धर्मोपदेश श्रवण करता रहता है, तो उसपर श्रद्धा उत्पन्न होना कठिन हो पड़ती है ; क्योंकि सामान्य जीवों में तत्त्व बुद्धि का अभाव होता है। अनेक मनुष्य धर्मोपदेश सुनकर श्रृंगारादि कथा रस में लीन होते हैं, इसके फलस्वरूप वे अपने सद्‌गुण भी खो बैठते हैं। तत्त्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुद्धि प्राप्त होने पर भी श्रद्धा नहीं होती। ऐसे मनुष्यों का चित्त सदा अस्थिर और डावाँ डोल बना रहता है। उन्हें कभी भी तत्त्व-बोध की प्राप्ति नहीं होती। वे मूर्खों की भाँति सदा प्राप्त और अप्राप्त का ही विचार किया करते हैं। जो लोग आगम प्रमाण और अनुमान प्रमाण से ध्यानपूर्वक गवेषणा करते हैं, उन्हीं को तत्वबोध की प्राप्ति होती है। तत्व बोध के भी दो भेद हैं। संवेदन तत्त्व बोध * और स्पर्शतत्त्व◆ संवेदन तत्त्व-बोध बंध्य है और स्पर्श-तत्त्व-बोध से कार्यबोध की सिद्धि होती है अतएव वह फलप्रद है। इसलिये संवेदन तत्त्व-बोध का त्याग कर स्पर्श तत्त्व-बोध को ही ग्रहण करना उचित है।

स्पर्श तत्त्व-बोध के इस प्रकार दश भेद हैं, (१) धर्म का मूल दया है और क्षमा गुण से ही अविरुद्ध भाव में रहती हैं (२) सर्व गुण विनय से ही प्राप्त होते हैं और विनय गुण मार्दव के अधीन है। जिसके मन में मार्दव गुण का वास होता है, उसे सब गुणों की सम्पत्ति अनायास ही मिल जाती है।

---

* जो मनुष्य, बिना श्रद्धा के वस्तु-स्थिति को यथास्थिति समझ कर उसे ग्रहण करता है। वह संवेदन तत्त्व-बोध कहलाता है। शास्त्रकारों ने इसे बंध्या स्त्री की तरह बतलाया है; यानी इस तत्त्व बोध से भव्यजीवों को कुछ भी फल नहीं होता।

◆ आगम-शास्त्रों के श्रवण करने से जिस मनुष्य को जीवादि नवतत्त्वों का श्रद्धा-पूर्वक भली प्रकार ज्ञान हो, उसके विशुद्ध अध्यवसाय एवं मन, वचन, कायाको एकाग्रता द्वारा तथा उत्तम गुरु के सदुपदेश से धर्म की वस्तु-स्थिति का जो तत्त्व-बोध हो, उसे स्पर्श तत्त्व-बोध कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) आर्जव--सरलता के बिना जिस धर्म की आराधना की जाती है, वह अशुद्ध ही होता है। अशुद्ध धर्म के आराधन से मोक्ष प्राप्ति नहीं होती, इसलिये प्रत्येक मनुष्य को ऋजुभावी--सरल होना अत्यन्त आवश्यक है। (४) शौच धर्म भी अत्यन्त आवश्यक है। इसमें अन्न-पानी प्रभृति की शुद्धता को द्रव्य शौच और कषायादि रहित शुद्ध परिणति को भाव शौच कहते हैं। ज्यों-ज्यों भाव शौच की वृद्धि होती है, त्यों-त्यों मोक्ष प्राप्ति समीप आती-जाती है, इसलिये इसकी भी परम आवश्यकता है। (५) संयम धर्म के पाँच आश्रवों से दूर होना, पञ्चेन्द्रियों का निग्रह करना, चार कषायों का त्याग करना, तीन दण्डों से दूर रहना--यह उसके सत्रह भेद हैं। इस सत्रह का त्याग होने पर ही आत्मा संयम धर्म में स्थिर हो सकती है, इसलिये संयम धर्म के आराधना करने की इच्छा रखनेवालों को उनसे दूर ही रहना चाहिये। (६) मुक्त धर्म—बन्धु-बान्धव, धन, इन्द्रिय जनित सुख, सात प्रकार के भय, अनेक प्रकार के विग्रह, अहंकार और ममता आदि के त्याग को मुक्त धर्म कहते हैं। जबतक पौद्गलिक वस्तुओं से ममत्व बुद्धि रहती है, तबतक मुक्त धर्म (निर्लोभता धर्म) प्रकट नहीं होता। (७) सत्य धर्म—अविशंवाद योग में प्रवृत्ति करना और मन, वचन, काया तीनों में निष्कपटता रखना, इसका प्रधान लक्षण है। स्थानांगसूत्र में नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव चार प्रकार के सत्य बतलाये गये हैं। यह वर्णन केवल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन-दर्शन में ही पाया जाता है। अन्य दर्शनों में सत्य के पूर्ण रूप का प्रतिपादन नहीं किया गया है। इस उत्कृष्ट सत्य धर्म में प्रवृत्ति करना परमावश्यक है। (८) तप धर्म इसके बाह्य और अभ्यन्तर मिलकर बारह भेद हैं। यथाशक्ति इनका पालन अवश्य करना चाहिये; क्योंकि पूर्व संचित हीन कर्मों को क्षय करने का प्रधान साधन तप धर्म ही है। आत्मा से चिपटे हुए चिकने कर्मों को भी यह अलग कर देता है। (९) ब्रह्मचर्य धर्म—इसके १८ भेद हैं। उन अठारह भेदों को यथास्थिति समझ कर ब्रह्मचर्य का पालन करने से सब प्रकार के मनः कष्ट दूर हो जाते हैं। (१०) अन्तिम धर्म को अकिंचन धर्म—परिग्रह-त्याग कहते हैं। शास्त्रकारों ने इस धर्म में मूर्च्छाको ही परिग्रह बतलाया है, इसलिये सब पदार्थों पर से मूर्च्छा का त्याग करना चाहिये। कोई पदार्थ समीप होने पर भी यदि उसपर मूर्च्छा नहीं है तो वह परिग्रही नहीं कहा जा सकता। साथ ही यदि कोई भी पदार्थ समीप न होने पर भी अनेक वस्तुओं पर मूर्च्छा—वाञ्छना हो तो वह परिग्रही कहा जायगा। इन दस यति धर्मों में प्रवृत्ति करना ही मोक्ष प्राप्ति की प्रधान साधना है।

इन दस धर्मों में सर्व प्रथम क्षमा धर्म बतलाया है। उसके इस तरह पांच भेद हैं। (१) उपचार क्षमा (२) विचार क्षमा (३) विपाक क्षमा (४) वचन क्षमा और (५) धर्म क्षमा। केवल लोगों को दिखाने के लिये ही क्षमा का आड़म्बर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना—उपचार क्षमा है। क्षमा के भेद पर्याय आदि जानने को विचार क्षमा कहते हैं। बलवान मनुष्य के समक्ष निरुपाय हो, जो क्षमा की जाती है, उसे विपाक क्षमा कहते है। कटु शब्दों से किसी का दिल न दुखाना और दूसरे के कटु शब्द सुनकर स्वयं दुःखी न होना —वचन क्षमा है। आत्मा का धर्म ही क्षमा है यह समझकर क्षमा धर्म की आराधना करना और तेरहवें—चौदहवें गुणठाणे की इच्छा करना—धर्म क्षमा कहलाती है। इनमें से पहली तीन क्षमाओं से लौकिक सुख की और शेष दो क्षमाओं से पारलौकिक सुखों की प्राप्ति होती है।

क्षमा के चार अनुष्ठान हैं—(१) प्रीति अनुष्ठान (२) भक्ति अनुष्ठान (३) वचन अनुष्ठान और (४) असंग अनुष्ठान। अनुष्ठान का अर्थ आवश्यक क्रिया है। प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान यह तीन प्रीति अनुष्ठान कहलाते हैं। सामायिक, चतुर्विंशति स्तव और वन्दना—यह तीन भक्ति अनुष्ठान कहलाते हैं। आगम के अनुसार आचरण करने को वचन अनुष्ठान और जो आसानी से हो जाय उसे असंग अनुष्ठान कहते हैं। स्त्री और माता दोनों नारी जाति और दोनों प्रिय होने पर भी स्त्री पर जो अनुराग होता है वह प्रीतिराग कहलाता है और माता पर जो अनुराग होता है, वह भक्तिराग कहलाता है। उसी प्रकार प्रतिक्रमण, काउसग्ग और पच्चक्खाण इन तीनों का बारम्बार सेवन करने से गुण की वृद्धि होती है ; इसलिये यह प्रीति अनुष्ठान माने जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक चारित्र, चतुर्विंशति स्तव तथा वन्दना यह तीनों देवगुरु के सेवा रूप होने के कारण भक्ति अनुष्ठान रूप माने जाते हैं। आगम के कथनानुसार ज्ञान क्रियादिक बारंबार समझ कर तदनुसार प्रवृत्ति करना वचनानुष्ठान कहलाता है। दण्डसे कुछ समय तक चक्र को घुमाने के बाद फिर वह बहुत देर तक जिस प्रकार अपने-ही-आप घुमा करता है, उसी प्रकार दीर्घकाल पर्यन्त सेवन करने के कारण जो अनुष्ठान अनायास सफल होता है, उसे असंग अनुष्ठान कहते हैं।

इसके अतिरिक्त यति और श्रावकों द्वारा सम्पन्न होनेवाली क्रियाओं के इस तरह पाँच भेद हैं।—(१) विषक्रिया (२) गरलक्रिया (३) अनुष्ठान (अन्योन्य) क्रिया (४) तद्धतु क्रिया और (५) अमृत क्रिया। इनमें से प्रथम तीन क्रियायें त्याज्य हैं और अन्तिम दो क्रियायें आदरणीय हैं; क्योंकि उनसे मुक्ति प्राप्त होती है। जो क्रियायें केवल लोगों को दिखानेके लिये ही की जाती हैं और जो इहलौकिक सुख के लिये एवम् खान-पान, कपड़े लत्ते, आदि की इच्छा से की जाती हैं, वे विषक्रिया कहलाती हैं। जिस प्रकार विष खाने से उसी क्षण मृत्यु होती है, उसी प्रकार इन क्रियाओं का फल भी हाथोहाथ मिल जाता है—उस जन्म के लिये तो कुछ भी नहीं बचता, इसे कपट क्रिया भी कहते हैं। दूसरे जन्म में देव, इन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती—आदि के सुख किंवा स्त्री, पुत्र, धन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धान्यादिक की प्राप्ति के लिये जो क्रियायें की जाती हैं, उन्हें गरल क्रिया कहते हैं। जिस प्रकार पागल कुत्ते का विष दो तीन वर्ष तक असर करता है, उसी प्रकार यह क्रियायें भी दो-तीन जन्म तक सांसारिक फल देती हैं ; किन्तु इनके द्वारा चारित्र धर्म का वास्तविक फल प्राप्त नहीं होता। दूसरों को क्रिया करते देख, उनकी विधि जाने बिना ही संमूर्छम की भाँति उठना-बैठना और क्रिया करना, किन्तु उनका अर्थ न समझना—अनुष्ठान क्रिया कहलाती है। यह क्रिया केवल खान-पान के प्रलोभ के ही कारण की जाती है। इसमें शास्त्रोक्त विधि किंवा गुरु के प्रति विनय विवेक प्रभृति बातों का पता भी नहीं रहता । जो सम्पूर्ण बैराग्य से और भद्रिक परिणाम से, गुरु का उपदेश सुनकर संसार के सब भाव अनित्य समझ, संसार से विरक्त हो, चारित्र लेता है और शुद्ध राग तथा पूर्ण मनोरथ से जो क्रिया करता है, वह तद्धेतु क्रिया कहलाती है। इसकी विधि शुद्ध नहीं होती, किन्तु क्रिया करने से अन्त में शुद्ध हो जाती है। शुद्ध विधि से, आत्मा के शुद्ध अध्यवसाय-पूर्वक जो क्रिया की जाती है, वह अमृत क्रिया कहलाती है। यह क्रिया करनेवाले प्राणी विरले ही दिखाई देते हैं ; किन्तु यह क्रिया चिन्तामणि रत्न के समान है। इसके बिना इस संसार से निस्तार पाना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव होता है, इसलिये निरन्तर इस क्रिया की प्राप्ति के लिये उद्योग करते रहना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे भव्य प्राणियो! इस प्राणी ने भूतकाल में अनेक बार द्रव्यलिंग धारण किया है और क्रियायें भी की हैं ; किन्तु वे क्रियायें शुद्ध न होने के कारण उनके फल की प्राप्ति नहीं हुई। जिस समय जीव को सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है और अर्धपुद्गल परावर्तन संसार रह जाता है, तभी शुद्ध क्रिया की प्राप्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं।

अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप—यह नवपद मुक्ति के वास्तविक साधन हैं। अर्थात् इन नवपदों की साधना करने से प्राणी मुक्ति-सुख को प्राप्त कर सकता है। इन नव पदों के ध्यान से आत्मस्वरूप प्रकट होता है और जिसे आत्म दर्शन हो जाता है, उसके लिये संसार मर्यादित हो जाता है—उसकी अपरिमितता नष्ट हो जाती है।

जिस प्रकार दर्शन शब्द में सम्यक्त्व की प्रधानता है उसी प्रकार उसमें ज्ञान की भी प्रधानता है। ज्ञानी अर्ध क्षण में जितने कर्मों का क्षय कर सकता है, अज्ञानी करोड़ों वर्ष पर्यन्त तीव्र तप करने पर भी उतने कर्मों का क्षय नहीं कर सकता। ज्ञानी तपस्या से भी कार्य सिद्ध कर सकता है। एक प्राणी यदि ज्ञान की वृद्धि करे और दूसरा तप की वृद्धि करे, तो उन दोनों में ज्ञानी प्रथम मुक्ति प्राप्त कर लेता है अर्थात् ज्ञानी तपस्वी से बाजी मार ले जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोक्ष-प्राप्ति करने में सम्यक्त्व और ज्ञानकी जितनी आवश्यकता बतलायी गयी है, उतनी ही आवश्यकता शुद्ध चारित्र की भी मानी गयी है। जो प्राणी आत्म-ज्ञान में मग्न होता है, वह पुद्गल के खेलों को इन्द्रजाल के समान मानता है। उनमें वह किसी प्रकार आसक्त नहीं होता। आत्मज्ञानी के लिये संसार में आसक्त होना संभव ही नहीं है ; क्योंकि वह तो पुद्गल के उत्पत्ति और विनाश धर्म को भली-भाँति समझता है। इसीलिये वह उनमें लुब्ध नहीं होता। वह जानता है कि पुद्गलों में लुब्ध होने के कारण ही मैं अनन्त काल से संसार में भटक रहा हूँ, इसलिये अब उसमें पड़ना ठीक नहीं। जिस प्रकार अज्ञानी इन्द्रजाल को सत्य मानता है, ज्ञानी नहीं मानता, उसी प्रकार अज्ञानी ही पौद्गलिक पदार्थों में आसक्त होता है। जो ज्ञानी के वचन सुनकर आत्मा को पहचान लेता है और क्षीर-नीर की भाँति सारा-सार समझ कर साधना करता है, वह आठ कर्मों के आवरण को दूरकर आत्मा के मूल गुण को प्रकट करता है और उसे ही सिद्ध पद की प्राप्ति होती है, इसलिये हे भव्य प्राणियो! तुम्हें आत्मा को पहचानने और उसके मूल स्वरूप को प्रकट करने की सदैव चेष्टा करनी चाहिये।

इस प्रकार अजीतसेन मुनि का धर्मोपदेश श्रवणकर राजा श्रीपाल खड़े हो, हाथ जोड़ कर उनसे प्रश्न करने लगे:—"पूज्य गुरुदेव! आपने जो धर्मोपदेश दिया, उसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुनकर मैं कृतकृत्य हुआ हूँ। अब मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, कि कृपया मुझ यह बतलाईये, कि बाल्यावस्था में मुझे किस कर्म के उदय से कुष्ट रोग हुआ था? फिर किस कर्म से वह अच्छा हो गया? किस कर्म-के कारण स्थान-स्थान पर मुझे ऋद्धि-सिद्धि की प्राप्ति हुई? किस कर्म के कारण मैं समुद्र में गिरा? किस कर्म के कारण मुझे भांड होने का कलंक लगा? किस कर्म से यह सब विपत्तियाँ दूर हो गयीं? और किस कर्म से मुझे इन नव स्त्रियों और राज्य की प्राप्ति हुई? यह सब बातें जानने के लिये मैं अत्यन्त उत्सुक हो रहा हूँ। आप दयालु हैं। परोपकारी हैं। सर्वज्ञ हैं। क्या यह रहस्य मुझे बतलाने की कृपा न करेंगे?"

इस तरह राजा श्रीपाल के प्रश्न करने पर अजीतसेन मुनि ने कहा :— "हे श्रीपाल! प्राणी जो-जो कर्म करता है, वह उसे दूसरे जन्म में अवश्य ही भोगने पड़ते हैं। किए हुए कर्मों को बिना भोगे उसका नाश नहीं होता। इसलिये उसके विपाक से डरनेवाले प्राणियों को अशुभ कर्म ही न करने चाहिये। इस संसार में जो सुख या दुःख प्राप्त होता है वह सब शुभाशुभ कर्मों के ही कारण प्राप्त होता है। राजा या रंक" दरिद्र या चक्रवर्ती, सबको कर्म के ही अधीन रहना पड़ता है कर्म के आगे किसी का बल नहीं चलता। इसलिये पूर्व संचित कर्मों को सम्यग् भाव से सहन करने चाहिये और नये अशुभ कर्म न करने चाहिये। अब मैं तुम्हारे पूर्व जन्म का वृत्तान्त वर्णन करता हूँ, उसे सुनो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा श्रीपाल का पूर्व जन्म

इस भरत क्षेत्र में हिरण्यपुर नामक एक नगर है। कुल काल पूर्व वहाँ श्रीकान्त नामक एक राजा राज करता था। उसकी रानी का नाम श्रीमती था। वह बड़ी ही गुणवती और शीलवती थी। जैनधर्मपर उसकी पूर्ण श्रद्धा थी। उसमें एक भी अशुभ प्रवृत्ति दिखायी न देती थी ; किन्तु उसके पति अर्थात् राजा को शिकार का बड़ा ही बुरा व्यसन था। रानी उसे बार-बार समझाती कि :– "हे नाथ ! आप शिकार खेलने न जाइये; क्योंकि यह प्रवृत्ति नरक ले जाने वाली है। आपके इस काम से पृथ्वी और पत्नी दोनों को लज्जा आती है, इसलिये जीव हिंसा की इस अनीति को छोड़ दीजिये। मुँह में तृण लेने से शत्रु को भी क्षत्री छोड़ देते हैं, तो यह निरपराध पशु, जो नित्यही तृण खाते हैं, इन्हें उत्तम क्षत्री कैसे मार सकता है? यह काम तो किसी गँवार के ही हाथों होना सम्भव है। साथ ही जिसके पास हथियार नहीं होते, उसपर नीतिज्ञ क्षत्री भूलकर भी आक्रमण नहीं करते। फिर आप इस निरीह पशुओं पर कैसे आक्रमण कर सकते हैं? क्षत्री लोग भागते हुए शत्रु को भी कभी नहीं मारते, तो फिर शिकार के समय जो पशु आपको देखते ही प्राण लेकर भागते हैं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्हें मारना क्या आपका कर्तव्य कहा जा सकता है? पाप-शास्त्र के उपदेशकों का कथन है कि राज्य की सीमा में जो वृक्ष, घास, जल, आदि चीजें होती हैं, उनका समस्त अधिकार राजा को ही होता है, अतएव जो पशु या पक्षी, राजा की आज्ञा के बिना ही इन्हें नष्ट करते हों, या जो पशु-पक्षी प्रजा को कष्ट पहुँचाते हो, उन पशु पक्षी और जलचरों को मारने से राजा को दोष नहीं लगता; किन्तु यह ठीक नहीं। उत्तम शास्त्रों में सर्वत्र हिंसा की निन्दा ही की गयी है। हिंसा किसी भी रूप में, किसी भी स्थान में, प्रशंसनीय नहीं हो सकती। जो स्वयं सन्ताप में पड़ता है और दूसरों को भी संताप में डालता है। वह पापी कहलाता है। शिकारी की भी इसी कोटि में गणना की जा सकती। उसे कुल-कलंक और कुल-नाशक ही कहना चाहिये। जो दुर्बल पर हाथ छोड़ता है, उसका पराक्रम व्यर्थ है। उसके कार्यों से संसार में अपयश ही प्राप्त होता है और यह है भी स्वाभाविक। कोयला खाने से मुँह काला ही होता है।"

इस प्रकार रानी अनेक प्रकार से राजा को समझाती थी, किन्तु राजा के हृदयपर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ता था। जिस प्रकार पुष्करावर्त्तमेघ के बरसने पर भी मग-सलिया पाषाण भीगता नहीं, उसी प्रकार चाहे जैसा उपदेश देनेपर भी मूर्ख पर कोई असर नहीं होता। कई बार तो उसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हित वचन भी कटु प्रतीत होते हैं और उनसे बोध ग्रहण करने के बदले वह क्रोध प्रकट करता है, अस्तु।

एक बार वह राजा सात सौ उद्दण्ड कर्म चारियों को साथ लेकर शिकार खेलने गया। वहाँ किसी गहन वन में उसने एक मुनि को देखा। देखते ही वह अपने साथियों से कहने लगाः— "देखो, यह कोई कोढ़ी जा रहा है।" उसकी बात सुनते ही वे लोग उसे बेतरह मारने और अपमानित करने लगे। मुनिपर ज्यों-ज्यों मार पड़ती थी, त्यों-त्यों राजा को आनन्द आता था और वह हँसता था। उधर मुनि के हृदय में शान्त रसकी अविच्छिन्न धारा बह रही थी। वे न तो बोलते थे, न चालते थे, न किसी के इस कार्य का विरोध ही करते थे। राजा के नौकरों ने उनको अत्यन्त कष्ट दिया। तदनन्तर वे सब लोग उन्हें वहीं छोड़ अपने निवास-स्थान को लौट आये।

एक दिन राजा अकेला ही शिकार खेलने गया। वहाँ उसने एक मृग का पीछा किया, किन्तु मृग भाग कर नदी-तटके एक जंगल में घुस गया। राजा भी उसके पीछे-पीछे जंगल में घुसा; किन्तु वह उस जगह रास्ता भूल गया। भटकता हुआ बड़ी देर में नदी के तट पर पहुँचा। वहाँ उसने एक मुनि को काउसग्ग ध्यान में निमग्न देखा। उन्हें देखते ही राजा को शैतानी सूझी। उसने मुनि को कान पकड़ कर उठाया और नदी के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अगाध जल में डुबो दिया ; किन्तु पश्चात् उसे कुछ दया आ गयी, इसलिये उसने उन्हें फिर जल से बाहर निकाल लिया। मुर्च्छित अवस्था में उन्हें छोड़, जब वह अपने निवास स्थान को लौटा, तब कौतूहल वश रानी से यह हाल कह सुनाया। सुनते ही रानी ने कहा :—

"प्राणनाथ! आपने यह बहुत ही अनुचित कार्य किया है। किसी साधारण प्राणी को भी दुःख देने से अनेक जन्म पर्यन्त दुःख सहन करने पड़ते हैं, फिर आपने तो एक मुनि को कष्ट पहुँचाया है। अतएव न जाने कबतक आपको इस पापके फल भोगने पड़ेंगे?"

रानी की यह बात सुन राजा को क्षणिक खेद हुआ। उसने कहा :— "जो हुआ सो हो गया, अब कभी ऐसा काम न करूँगा।"

एक दिन की घटना है, कि राजा अपने महल के झरोखे में बैठा हुआ था। उसी समय गोचरी के निमित्त घूमते हुए एक मुनि उधर से आ निकले। राजा को रानी की शिक्षा की विस्मृति हो गयी। उसने अपने आदमियों से कहा :— "इस भिक्षुक ने समूचे नगर को भ्रष्ट कर डाला। इसे इसी समय नगर के बाहर निकाल दो।" राजा की आज्ञा सुनते ही उसके अविचारी कर्मचारियों ने मुनि को धक्का दे, बाहर निकालना आरम्भ किया। संयोगवश यह घटना रानी ने देख ली। उसे जब मालूम हुआ, कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा की आज्ञा ही ऐसा किया जा रहा है, तब वह उसी समय उसके पास पहुँची और क्रुद्ध होकर उसने कहा:- "नाथ! आपको अपनी प्रतिज्ञा भी स्मरण नहीं रहती। अभी उस दिन आपने कहा था, कि अब कभी किसी मुनि को कष्ट न दूँगा, किन्तु फिर भी वही बात करने लगे। ध्यान रहे, ऐसे आचरणों से स्वर्ग प्राप्ति दुर्लभ हो जायगी और नरक के दरवाजे खुल जायेंगे ; किन्तु इसमें किसी का क्या दोष?" आपको नरक ही पसन्द है, तो कोई इसमें क्या कर सकता है? रानी को क्रोधित देख कर राजा उसी समय शान्त हुआ। उसे न केवल अपनी भूल ही मालूम हुई, बल्कि अपने इस कार्य के लिये पश्चात्ताप भी होने लगा। उसी समय उसने मुनिराज को अपने महल में बुलाकर उनसे क्षमा प्रार्थना कर अपना अपराध क्षमा करवाया। रानी ने भी दुःखित होकर मुनिराज से विनय-पूर्वक कहा :— "गुरुदेव! मेरे पतिदेव परम अज्ञानी हैं। इन्होंने आपका अपमान कर भयंकर पाप किया है। कृपाकर अब इससे मुक्त होने का कोई उपाय अवश्य बतलाइये।"

मुनिने कहा :— "हे भद्रे! इस भयंकर पाप से यकायक छुटकारा पाना तो कठिन है, फिर भी यदि इसे इसके लिये पश्चाताप होता हो और यह इससे मुक्त होना चाहता है, तो नवपद का जप करे, उसकी आराधना के निमित्त आयम्बिल का तप करे और सिद्धचक्र की पूजा अर्चना करे। इससे कालान्तर में इस पाप से मुक्त हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकेगा। यह सुनते ही राजा ने उक्त प्रायश्चित करना स्वीकार कर लिया। उसी समय मुनि राज से इसकी विधि आदि की बातें पूछ लीं। यह सब बताकर मुनिराज वहाँ से चल दिये। इधर राजा और रानी दोनों ने सिद्धचक्र की आराधना आरम्भ की। अन्त में उसका उत्सव मनाया, उस समय रानी की आठ सखियों और राजा के सात सौ सेवक-साथियों ने उसका अनुमोदन किया और उसमें भाग लिया। यह कार्य पूरा होने पर राजा और रानी अपने को कृतकृत्य समझने लगे।

एक समय की बात है कि उसी श्रीकान्त राजा ने अपने सात सौ सेवकों के साथ अपने पड़ोस के सिंह नामक राजा के नगर पर आक्रमण किया। उसने नगरी का कुछ भाग लूट लिया और गायों का एक झुण्ड अधिकृत कर अपने नगर की ओर लौटा। जब सिंह राजा ने यह समाचार सुना, तब उसे बड़ा ही क्रोध आया और उसने अपनी सेना लेकर इन लोगों का पीछा किया। मार्ग में दोनों दलों की भेट हो गयी। सिंह के सैनिक सिंह की भाँति श्रीकान्त के दलपर टूट पड़े और देखते ही देखते उन सात सौ सैनिकों को स्वर्ग का रास्ता दिखा दिया। राजा श्रीकान्त को, किसी तरह अपने प्राण लेकर भागना पड़ा। सिंह राजा ने उसकी लूटी हुई समस्त सम्पत्ति और गायों पर अपना अधिकार कर लिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार सिंह राजा के द्वारा श्रीकान्त के जो सात सौ सैनिक मारे गये थे, वे दूसरे जन्म में क्षत्री हुए, किन्तु उन्होंने मुनियों को सताने का अपराध किया था, इसलिये वे सबके सब कोढ़ी हो गये। श्रीकान्त राजा का शरीरान्त होने पर पुण्य प्रभाव से वह तेरे अर्थात् श्रीपाल के रूप में उत्पन्न हुआ, किन्तु उसने भी मुनियों को सताया था, इसलिये तुझे इस जन्म में कोढ़ी होना, समुद्र में गिरना और कलंकित होना पड़ा। तेरी जो रानी थी, वह इस समय मैनासुन्दरी हुई है, और तुझे जो ऋद्धि-ऋद्धि प्राप्त हुई है, वह रानी के आदेशानुसार तूने जो सिद्धचक्र की आराधना की थी, उसी का प्रताप है। आठ सखियों ने तुम्हारे धर्माराधन की प्रशंसा की थी, अतएव वे तेरी छोटी रानियाँ हुई। इस आठ में से सबसे छोटी ने अपनी सौत को एक बार कहा था कि:— "तुझे साँप काट खाय! अतएव उसे इस जन्म में साँप ने काटा था। तेरे सात सौ सेवकों ने नवपद महात्म्य की अत्यन्त प्रशंसा की थी, इसलिये वे इस जन्म में राणा हुए।"

सिंह राजा ने सात सौ सुभटों का विनाश किया था, अतएव उसे बड़ा ही खेद हुआ। अन्त में उसने चारित्र ग्रहण किया और एक मास का अनशन व्रत धारण कर शरीर त्याग दिया। दूसरे जन्म में यह सिंह राजा मेरे रूप में उत्पन्न हुआ। उस जन्म में तूने मेरे राज्य पर आक्रमण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर उसे लूटा था, इसलिये इस जन्म में बाल्यावस्था से ही मैंने तेरा राज्य छीन लिया। उस जन्म में सात सौ सुभटों का मैंने विनाश किया था, अतएव इस जन्म में उन्होंने मुझे बाँध कर तेरे सामने उपस्थित किया। पूर्व जन्म के सुकृत्यों के कारण मुझे उस समय जाति स्मरण ज्ञान हुआ। अतएव मैंने उसी समय अपने आपको सम्हाला और चारित्र ग्रहण किया। क्रमशः मुझे अवधिज्ञान प्राप्त हुए, इसलिये मैं तुझे उपदेश देने यहाँ आया हूँ। हे श्रीपाल! उस जन्म में जिसने जैसे कर्म किये थे, इस जन्म में उसे वैसे ही फल मिले। तू यह निश्चय जानना, कि प्राणी जो कर्म करता है, उसे उसका भोग अवश्य ही करना पड़ता है, अतएव उचित तो यह है कि यथा सम्भव कर्म-बन्धन होने ही न दिया जाय।"

इस प्रकार पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनकर राजा श्रीपाल के मन में बहुत ही वैराग्य उत्पन्न हुआ। वे अपने मन में कहने लगे :— "अहो! इस संसार की नाट्यशाला में मैंने न जाने कितने नाटकों का अभिनय किया और आत्मा को विडम्बना में डाला; किन्तु अब इससे मुक्ति पाने का कोई उपाय अवश्य करना चाहिये। यह सोचकर उन्होंने अजीतसेन मुनि से कहा:—महाराज! इस समय चारित्र ग्रहण करने योग्य मेरी अवस्था नहीं है, किन्तु कृपा कर मुझे कोई ऐसी धर्म क्रिया बतलाइये, जो मेरे लिये उपयुक्त हो और उससे मेरा कल्याण हो।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिराज ने कहा :—"श्रीपाल! अभी तुझे अनेक कर्मों का फल भोगना है। अतएव इस जन्म में तुझे चारित्र की प्राप्ति होना कठिन है, परन्तु नवपद की आराधना करने से तू नवें लोक में देवता हो सकता है। वहाँ से च्युत होने पर तुझे फिर मनुष्य रूप में जन्म लेना होगा और इसी प्रकार मनुष्य से देवता और देवता से मनुष्य होते-होते क्रमशः नवे जन्म में तुझे मोक्ष की प्राप्ति होगी।"

मुनिराज के इस प्रकार मधुर वचन सुनकर श्रीपाल को बहुत ही आनन्द हुआ। उनका शरीर आनन्द के कारण रोमान्चित हो उठा। अनन्तर उन्होंने अजीतसेन मुनि के चरणों में वन्दन कर उनसे विदा ग्रहण की। मुनिराज भी दूसरे ही दिन वहाँ से किसी अन्य स्थान के लिये विहार कर गये। तदनन्तर राजा श्रीपाल ने शीघ्र ही शुभ मुहूर्त्त देखकर सपरिवार सिद्धचक्र की आराधना आरम्भ की। इस समय मैनासुन्दरी ने श्रीपाल से कहा:- "नाथ! पहले जिस समय हम लोगों ने सिद्धचक्र की आराधना की थी, उस समय हमलोगों के पास धन न था, अतएव प्रत्येक कार्य अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही किये थे। इस समय अपने पास धन की कमी नहीं है, इसलिये नवपद की आराधना भी हमें वैसे ही समारोह से करनी चाहिये; क्योंकि धन होनेपर भी जो लोग थोड़े धन से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म-कार्य करते हैं, उन्हें उसका सम्पूर्ण फल नहीं मिलता। यह मेरा नहीं बल्कि शास्त्रों का कथन है।" यह सुन कर श्रीपाल ने कहाः—"प्रिये! मैं तुम्हारी बात से पूर्ण रूपेण सहमत हूँ। हम लोगों को इस कार्य में किसी बात की कोर-कसर रखने की आवश्यकता नहीं है। "अनन्तर राजा श्रीपाल ने बड़े समारोह से नवपद की आराधना आरम्भ की और उनके समस्त परिवार ने भी इसमें योगदान दिया।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्रहवाँ परिच्छेद

नवपद की आराधना

मैनासुन्दरी के अनुरोध करने पर राजा श्रीपाल ने नवपद की आराधना आरम्भ की। सर्व प्रथम उन्होंने अरिहन्त पद की भक्ति के निमित्त बावन जिनालय वाले नव नये मन्दिर बनवाये। उनमें नव जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवायी। नव जीर्णोद्धार कराये और नाना प्रकार से जिनेश्वर भगवान की भक्ति पूर्वक पूजा की।

सिद्ध पद के आराधन के निमित्त उन्होंने सिद्ध प्रतिमा की तीनोंकाल भक्ति-पूर्वक पूजा एवं स्तुति की और तन्मय ध्यान से उसकी आराधना की।

आचार्य पद की आराधना के निमित्त, आचार्य महाराज का आदर-सत्कार और उनकी प्रेम पूर्वक वन्दना, वैयावच्च, सुश्रूषा और सेवना की तथा अशनादि—आहार, वस्त्र तथा उपाश्रय आदि के दान द्वारा इस पद की आराधना की।

उपाध्याय पद की आराधना में, अध्यापक और विद्यार्थियों को यथायोग्य अशन, वस्त्र, आसन आदि देकर, उनके निवास-स्थान का समुचित प्रबन्ध कर दिया। इसी तरह भाव-पूर्वक उक्त पद की आराधना की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि पद की आराधना के निमित्त, विनय-पूर्वक मुनि की वन्दना, वैयावच्च, रहने के लिये उपाश्रय, एवं वस्त्र-पात्र आदि देकर मुनि पद का आराधन किया।

दर्शन पद के आराधन में, उन्होंने अनेक तीर्थों की भाव-पूर्वक यात्रा की। हर एक तीर्थों में सब प्रकार की पूजायें करवायीं। संघ पूजा—स्वामी वात्सल्यादि किये। रथ-यात्रायें निकलवायीं और दृढ़ चित्त से शासन की उन्नति के अनेक कार्य किये।

ज्ञान पद का आराधन करते समय, उन्होंने सिद्धान्तादि आगम-शास्त्र लिखवाये। अनन्तर वासक्षेप से उनकी पूजा कर फल-नैवेद्य चढ़ाया। ज्ञान के अनेक उपकरणों का संचय किया और ज्ञान का अध्ययन करते-कराते उस पद की आराधना की।

चारित्र पद की आराधना के निमित्त, उन्होंने ग्रहण किये हुए व्रत-नियमों का दृढ़ता-पूर्वक पालन किया। यथा-शक्ति बारह व्रतों को अंगीकार किया। निरन्तर चारित्र-धर्म की इच्छा की। विरतिवान श्रावक-श्राविकाओं की विनय पूर्वक भक्ति की। यति-मुनिराज की भी द्रव्य और भाव से श्रद्धा-पूर्वक भक्ति कर यति धर्म के अनुरागी बने।

तप पद के आराधन के निमित्त उन्होंने लोक और परलोक विषयक, किसी प्रकार के सुख की इच्छा किये बिना, सब प्रकार से अप्रतिबद्धता-पूर्वक छः बाह्य और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छः अभ्यन्तर बारह प्रकार के तप कर इस पद की आराधना की।

इस प्रकार नवपद की द्रव्य और भाव-पूर्वक भली-भाँति आराधना करते हुए, जब साढ़े चार वर्ष व्यतीत हुए, तब इस तप की समाप्ति हुई। इस समय राजा श्रीपाल ने शास्त्रोक्त विधि के अनुसार बड़ा भारी उजमना किया। जिसका वर्णन होना कठिन है, किन्तु पाठकों की जानकारी के लिये पहले उजमने में क्या-क्या करना चाहिये, वह हम यहां संक्षेप में बताये देते हैं।

नव नये मन्दिर बनवाना। नव पुराने मन्दिरों का उद्धार करवाना और नव नयी जिन प्रतिमाओं का स्थापना करना चाहिये। अनन्तर दर्शन* ज्ञान♦ और चारित्रके❖ समस्त उपकरण नव-नव की संख्या में इकट्ठे कर एक

---

* दर्शन पदके उपकरण–सिंहासन, छत्र, चामर चौकी-पट्टों का त्रिगड़ा, कलश, थाली, रकेबी, बड़ा कटोरा, छोटी कटोरी, बड़ा कलश, कलसा, आचमनी, अष्ट मंगलिक, आरती, मंगलदीपक, धूपदानी, चन्दन घिसनेका ओरसिया, चन्दन का मुट्ठा, केसर की पुड़िया, धूप की पुड़िया, वालाकुची, अंग लुहणा, धोती, चद्दर, कम्बल, मुखकोश–दाढ़ि बन्धना, माला, स्थापनाजी, चन्द्रवा, पूठिया, तोरण, वासकुपी–वासक्षेप रखने की थैली, केसर के डिब्बे, काँच मोरपिछी, पुंजनी, दिवी, ध्वजा, घण्टा, झालर, स्थापना के उपकरण आदि सभी वस्तुएं नव-नव रखना चाहिये।

♦ ज्ञान पद के उपकरण में--श्रीपाल-चारित्र की पुस्तक, ठवनी, कोरे कागज के ताव, पटिया, कवली, माला, सांपड़ा, सांपड़ी, चक्कू, कैंची, पुस्तक रखने के डिब्बे, दवात, कलम, पट्टी, बरतना, पेन्सिल आदि चीजें नव-नव रखना चाहिये।

❖ चारित्र पद के उपकरण में–पात्रों की जोड़ी, तरपणी, झोली, चोलपट्टा, चादर, पांगरणी, कम्बल, डण्डा, मुहपत्ति दण्डासण आदि वस्तुएं नव-नव की गिनती कर रखना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुशोभित मण्डप की रचना कर उसके मध्य में नवपद-मण्डल बनाना चाहिये। इस मण्डल के बनाने की विधि इस प्रकार है :—

एक अष्टकोण नव पंखड़ियों का कमल बना कर उसके मध्य भाग में श्वेत धान्य (चाँवल) के अक्षरों में अरिहन्त करना चाहिये। पूर्व दिशा में रक्त धान्य (गेहूँ) से सिद्धपद करना चाहिये। दक्षिण दिशा में पीत धान्य (चने की दाल) से आचार्य पद की रचना करनी चाहिये। पश्चिम दिशा में नील धान्य (मूँग) से उपाध्याय पद बनाना चाहिये। उत्तर दिशा में कृष्ण धान्य (उड़द) से साधु पद बनाना चाहिये। चार विदिशाओं–कोणों में श्वेत धान्य (चाँवल) से दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चारों पदों को बनाना चाहिये। सिद्ध और आचार्य के बीच में दर्शन पद, आचार्य और उपाध्याय के बीच में ज्ञान पद, उपाध्याय और साधु के बीच में चारित्र पद और साधु तथा सिद्ध के बीच में तप पद आना चाहिये।

तदनन्तर इस कमल के आस-पास तीन वेदियाँ बनानी चाहिये। इनमें से पहली रत्न सूचक रक्त धान्यमयी, दूसरी सुवर्ण सूचक पीत धान्यमयी और तीसरी रौप्य सूचक श्वेत धान्यमयी बनानी चाहिये। पहली वेदी में मणि श्रेणी सूचक पञ्चवर्ण धान्य के कंगूरे और दूसरी वेदी में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रत्न सूचक रक्त वर्ण धान्य के कंगूरे और तीसरी वेदी में सुवर्ण सूचक पीतवर्ण धान्य के कंगूरे बनाने चाहिये।

इस मण्डल और मण्डप को अनेक प्रकार से सुशोभित करना चाहिये। ध्वजा-पताकाओं से सजाकर उसे ऐसा आकर्षण और रमणीय बना देना चाहिये, जिससे देखने वालों को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हो।

राजा श्रीपाल ने भी पाँचों वर्ण के उत्तम धान्य मँगाकर उन्हें मंत्र से पवित्र करा, उपरोक्त विधि से मण्डल की रचना करवायी। तदनन्तर प्रत्येक पद के गुणानुसार उनपर नारियल के गोले आदि रखे। प्रथम अरिहन्त पद के १२ गुण हैं, अतएव बारह नारियलों के गोले में सामान्य प्रकार से घृत और शर्करा भर, उन्हें श्वेत चन्दन से रंगकर यथा स्थान रखे। इसके बाद आठ महा प्राति-हार्य सूचक आठ कर्केतन रत्न ? रखे और चौंतीस अतिशय सूचक चौंतीस हीरे रखे। इस प्रकार उन्होंने श्रद्धा और भक्तिपूर्वक अरिहन्त पद की अत्यन्त भक्ति की।

दूसरे सिद्ध पदके ३१ गुण हैं, इसलिये ३१ गोले पूर्वोक्त रीति से भरवाकर लाल चन्दन से विलेपन करके रखे। साथ ही ३१ प्रवाल मूंगे रखे और उनके मुख्य आठ गुण होने के कारण आठ माणिक्य भी रखे। इस प्रकार राजा श्रीपाल ने सिद्ध पद की भक्ति की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीसरे आचार्य पदके ३६ गुण हैं, अतएव घी शक्कर से भरकर और पीले रंग से रंगकर ३६ नारियल के गोले रखे। साथ ही ३६ गोमेदक रत्न और आचार्य महाराज पाँच आचारों से युक्त होते हैं, इसलिये पाँच पीले मणिरत्न भी रखे। इस तरह राजा श्रीपाल ने आचार्य पद की भक्ति की।

चौथे उपाध्याय पद के २५ गुण हैं, इसलिये घी शक्कर से भरकर और नील वर्ण से रंग कर २५ गोले रखे। साथ ही २५ नील रत्न (नीलम) भी रखे। इस प्रकार उपाध्याय पद की आराधना कर अपने को कृतकृत्य समझा।

पाँचवें साधु पद के २७ गुण हैं; इसलिये घी शक्कर से भरे हुए और श्याम रंग से रंगे हुए २७ गोले और २७ ही अरिष्ट रत्न ? रखे। साथ ही साधुजी महाराज पाँच महाव्रत के स्वामी होने के कारण पाँच राजपद रत्न? भी रखे इस प्रकार राजा श्रीपाल ने साधु पद की भक्ति कर अत्यन्त पुण्य उपार्जन किया।

छठे दर्शन पद के ६७ भेद हैं अतएव श्वेत चन्दनसे रंगे हुए ६७ गोले और ६७ उज्ज्वल मुक्ताफल (मोती) रखे।

सातवें ज्ञान पद के प्रधान भेद पाँच होने के कारण पाँच गोले रखे और उत्तर भेद ५१ होने के कारण ५१ मुक्ताफल (मोती) रखे।

आठवें चारित्र पद के मुख्य पाँच भेद होने के कारण पाँच गोले रखे और दूसरे प्रकार से उसके ७० भेद होने के कारम ७० मुक्ताफल (मोती) रखे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवें तप पद के बारह भेद होने के कारण बारह गोले रखे और अन्य प्रकार से ५० भेद होने के कारण ५० मुक्ताफल (मोती) रखे। इस प्रकार इन चार पदों की राजा श्रीपाल ने विनय पूर्वक भक्ति की।

तदनन्तर नव पद के वर्णों के अनुसार वस्त्र, पुष्प और फल प्रभृति रखे। छुहारे, केले, आम, नारंगी, सुपारी, दाड़िम प्रभृति अनेक प्रकार के फलों के भी नव-नव ढेर लगाये। सुवर्ण के नव कलश रखे और रत्नों की भी नव ढेरियाँ लगायीं। नव ग्रह और दस दिग्पाल प्रभृति की भी उनके समीप स्थापना की। उनमें भी उनके वर्णानुसार फल, फूल और वस्त्रादि रखे।

इस तरह राजा श्रीपाल ने अत्यन्त उत्साह से उजमना सम्पन्न किया। उजमने के अन्त में प्रभु के बिम्ब को स्नान करा, चन्दन, पुष्प, दीप, अक्षत, फल, नैवेद्य प्रभृति द्वारा अष्ट प्रकार से पूजा की। अनन्तर आरती और मंगल दीपक किया। इस प्रकार जब मंगल अवसर सम्पन्न हुआ, तब समस्त संघ ने श्रीपाल को कुंकुम का तिलक कर अक्षत लगाये और गले में इन्द्रमाल आरोपित की। यह सब क्रियायें पूर्ण होनेपर राजा श्रीपाल जिस समय अपने महल को लौटे, उस समय नाना प्रकार के बाजे बज रहे थे। लोग नाच-गान कर रहे थे। भाट लोग विरदावली बोल रहे थे और चारों ओर उनके नाम का जय-जयकार हो रहा था। महल में आनेपर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्होंने संघ-पूजा और स्वामी वात्सल्यादि कार्य बड़े ही समारोह पूर्वक सम्पादित किये।

इस प्रकार पटरानी मैनासुन्दरी और अन्य आठ रानियों के साथ सिद्धचक्र की आराधना पूर्ण कर राजा श्रीपाल बड़े ही प्रसन्न हुए। अनन्तर उन्होंने अपनी नव रानियों के साथ बहुत दिनों तक राज-सुख उपभोग किया। उन्हें त्रिभुवनपाल आदि नव-गुणवान पुत्र भी हुए। श्रीपाल की उत्तरावस्था में उनके पास नव हजार हाथी, नव हजार रथ, नव लाख घोड़े और नव करोड़ पैदल सेना थी। सब मिलाकर नौ सौ वर्ष पर्यन्त उन्होंने राज किया। पश्चात् वे अपने ज्येष्ठ पुत्र त्रिभुवनपाल को अपने सिंहासनपर आसीन करा, स्वयं नव पद की भक्ति में तन्मय हो गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अठारहवाँ

नवपद-वर्णन

हम अपने पाठकों को पहले ही बतला चुके, कि राजा श्रीपाल अपने ज्येष्ठ पुत्र को सिंहासनारूढ़ करा, स्वयं नवपद के ध्यान में तन्मय हो गये। अब उन्होंने जो नवपदों की आराधना और उनकी स्तुति किस प्रकार की। यह हम विस्तार-पूर्वक अपने पाठकों को इस परिच्छेद में बतलाने की चेष्टा करेंगे।

अरिहन्त पदका वर्णन

अरिहन्त पद की स्तुति करते हुए उन्होंने कहा :-तीसरे जन्म में जिन्होंने, बीस स्थानों में से एक किंवा अधिक पदों की आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्म प्राप्त किया है और जो १४ स्वप्नों द्वारा सूचित मनुष्यत्व प्राप्त कर चारों निकाय के देवताओं के ६४ इन्द्रों से पूजित हुए हैं, ५६ दिक्कुमारिकायें और असंख्य इन्द्र, जिनका जन्मोत्सव करते हैं, ऐसे अरिहन्त देव को मैं बारंबार वन्दन करता हूँ।

जिनके पाँच कल्याणकों से अन्धकारमय सप्त नरकों में भी थोड़ा बहुत प्रकाश होता रहता है, जो सब प्राणियों से अधिक गुण और अतिशयों को धारण करने वाले हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे श्री अरिहन्त भगवान को नमस्कार कर मैं अपने अनेक भव संचित पापों को दूर करता हूँ।

पाठकों को यहाँ यह बतला देना आवश्यक है, कि तीर्थंकर के अतिशयों की संख्या ३४ है। इनमें से चार अतिशय तो उन्हें जन्म से ही होते हैं। ११ अतिशय घाती कर्म के क्षय से प्रभु को जब केवल ज्ञान उत्पन्न होता है, तब उसके साथ उत्पन्न होते हैं और १९ अतिशय उस समय देवकृत प्रकट होते हैं। जन्म से उत्पन्न होने वाले ४ अतिशय यह हैं :—

(१) भगवन का शरीर मल रहित, रोग-रहित, सुगन्धियुक्त और अद्‌भुत रूपवान होता है। (२) शरीर का रुधिर और माँस गौ-दुग्ध की भाँति उज्ज्वल और दुर्गन्ध-रहित होता है। (३) आहार और निहार अदृश्य होते हैं। (४) श्वासोच्छ्‌वास में कमल के पुष्प जैसी सुगन्ध होती है।

घाति कर्म के क्षय से उत्पन्न होनेवाले ११ अतिशय यह हैं — (१) एक योजन जितने समवसरण में तीनों भवन के देवता, मनुष्य और तिर्यञ्च समा सकते हैं। (२) भगवान की बातें देव, मनुष्य और तिर्यञ्च सभी अपनी अपनी भाषा में समझ सकते हैं। (३) भगवान जहाँ विचरण करते हैं, वहाँ आस-पास की २५ योजन की सीमा में पुराने रोग नष्ट हो जाते हैं और नये रोग नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होते। (४) जिन जीवों में परस्पर स्वाभाविक ही वैर होता है, उनका वैर भाव नष्ट हो जाता है ; यानी मित्र की तरह मिल-जुलकर रहते हैं। (५) भगवान जहाँ विचरण करते हैं, वहाँ दुष्काल नहीं पड़ता। (६) किसी प्रकार का भय न हो, और शत्रु सामना न कर सके। (७) महामारी आदि का उपद्रव नहीं होता। (८) इति अर्थात् धान्यादिक को नाश करनेवाले जीवजन्तुओं की उत्पत्ति नहीं होती। (९) अतिवृष्टि नहीं होती। (१०) अनावृष्टि नहीं होती। (११) भगवान के पीछे देदीप्यमान तेज-राशि–भामण्डल चमका करता है।

देवकृत १९ अतिशय इस प्रकार है :—

(१) मणिरत्नमय सिंहासन सदा साथ रहता है। (२) मस्तकपर तीन छत्रों की छाया रहती है। (३) धर्मध्वज--रत्नमय इन्द्रध्वज निरन्तर आगे चलता है। (४) बारह जोड़ी चँवर आप ही आप डोला करते हैं। (५) धर्मचक्र आकाश में रहने पर भी आगे-आगे चलता है। (६) प्रभु के शरीर से बारह गुना बड़ा अशोक-वृक्ष उनके मस्तकपर सदा साथ रहता है। (७) प्रभु जब पूर्वाभिमुख होकर सिंहासन पर बैठते हैं, तब वे चतुर्मुख दिखायी देते हैं। (८) चाँदी, सोना और रत्नमय तीन किले होते हैं। (९) भगवान जब चलते हैं, तब सुवर्णमय नव कमल पैरों के आगे पीछे चलते हैं। (१०) कांटे अधोमुख हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाते हैं। (११) संयम लेने के बाद केश और नख नहीं बढ़ते। (१२) कम से कम एक करोड़ देवता साथ रहते हैं। (१३) सभी ऋतुयें सुखदायी होती हैं। (१४) सुगन्धित जल की वृष्टि हुआ करती है। (१५) जल और स्थल में उत्पन्न होनेवाले पुष्पों की घुटने तक वृष्टि होती है। (१६) उत्तम पक्षी प्रदक्षिणा करते रहते हैं। (१७) वायु अनुकूल हो जाता है। (१८) वृक्ष झुक-झुक कर प्रणाम करते हैं। (१९) * आकाश में देवता दुन्दुभी बजाते हैं। ऐसे ३४ अतिशय युक्त जो अरिहन्त परमात्मा हैं उनको मैं त्रिविध नमस्कार करता हूँ।

जो प्रभु गर्भ में उत्पन्न होने के समय से ही तीन ज्ञानों से अलंकृत होते हैं। देव जन्म में जितना मति, श्रुति और अवधिज्ञान होता है, उतना नाश न होकर जिनके साथ ही आता है। जो प्रभु अनेक प्रकार की बाह्य ऋद्धियों के स्वामी होनेपर भी, जिस समय जानते हैं कि भोग कर्म क्षीण हो गया है, उस समय एक क्षण का भी विलम्ब न कर, सारे संसार का त्याग कर चारित्र ग्रहण करते हैं।

---

* भगवान के आठ प्रतिहार्यों में से अशोक-वृक्ष, सुर-पुष्प वृष्टि, चँवर, सिंहासन, दुंदभी और छत्र-त्रय यह छह प्रतिहार्य १९ अतिशयों में आ जाते हैं। भामण्डल रूप प्रतिहार्य रूप प्रतिहार्य कर्म क्षय से होनेवाले १९ अतिशयों में हैं और दिव्यध्वनि, जो कि देवताओं द्वारा की जाती है, वह वाणी के गुणों के कारण उसी के अन्तर्गत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस समय से जिन्हें चौथा मनः पर्यवज्ञान उत्पन्न होता है। जो छद्मावस्था में प्रायः मौन रह कर, घातिक कर्म का अन्त लाने के लिये, ज्ञान, दर्शन, चारित्र और बाह्याभ्यन्तर तप द्वारा, प्रबल यत्न से उसका सर्वथा क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं, बाद को तीर्थंकर नाम कर्म का उदय होने से भव्य; सुलभबोधी और परितप्त संसारी जीवों को उपदेश द्वारा संसार-सागर के उस पार पहुँचाते हैं और स्वयं जीवन के अन्तिम भाग में, निर्मल ध्यान से शैलेशी करण द्वारा अयोगी अवस्था प्राप्त कर सिद्धिस्थान को प्राप्त करते हैं, ऐसे वीतराग परमात्मा को मैं शुद्ध अन्तःकरण से बारंबार नमस्कार करता हूँ।

अरिहन्त देवको सब प्रकार की उपमायें दी जा सकती है; किन्तु शास्त्रकारों ने विशेष रूप से महागोप, महा माहण, निर्यामक और सार्थवाह की ही उपमा दी है। जिस प्रकार एक चरवाहा अपने आश्रित गायों की सब प्रकार से रक्षा कर उन्हें उनके नियत स्थान पर पहुँचाता है, उसी तरह भगवन्त भी भव्यजीव रूपी गायों के समुदाय को जन्म और जरा-मरण के भय से बचाकर मोक्ष रूपी उनके नियत स्थान में निर्विघ्न पहुँचाते हैं, इसलिये उनको महागोप की उपमा दी जाती है। भगवान के उपदेश से अनेक मनुष्य मुनि-व्रत ग्रहण कर छह काय के जीवों की रक्षा करते हैं, तीनों जगत में वे अमारीपडह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बजवाते हैं और चारों ओर मा हण (मत मारो) शब्द घोषित कराते हैं, इसलिये परमात्मा को महामाहण की उपमा दी गयी है। निर्यामक कहते हैं, नौकाके प्रधान नाविक मल्लाह (कप्तान) को। जिस प्रकार नाविक नावपर बैठने वाले मुसाफिरों की समुद्र के उपद्रवों से रक्षा कर उन्हें नियत स्थान पर पहुँचाता है, उसी प्रकार अरिहन्त भगवान भी भवसागर में पड़े हुए भव्य जीवों को उनकी भवस्थिति परिपक्व होने पर, उससे उद्धार कर शुद्ध मार्ग में पहुँचाते हैं और चारित्र रूपी नौका में बैठाकर घातिक कर्मरूपी उपद्रव का सर्वथा क्षयकर उन्हें सिद्ध स्थान में पहुँचाते हैं। इसी से उन्हें अपूर्व निर्यामक की उपमा दी गयी है। सार्थवाह अर्थात् मार्गरक्षक जिस प्रकार अपने साथ के व्यापारियों के माल की रक्षा कर, उन्हें विकट रास्तों को पार करा, निर्दिष्ट नगर में पहुँचा देता है, उसी प्रकार तीर्थंकर भी भवचक्र में भटकते हुए भव्यजीवों को अपने सदुपदेश द्वारा सुमार्ग दिखाकर मोक्षरूपी नगर में पहुँचा देते हैं। अतएव उन्हें सार्थवाह की उपमा दी गयी है। यह चारों उपमायें जिनके सम्बन्ध में पूर्णरूप से घटित होती हैं, उन अरिहन्त देव को मैं त्रिविध नमस्कार करता हूँ। साथ ही जो परमात्मा उपरोक्त आठ प्रातिहार्यों से सदा अलंकृत रहते हैं, जिनकी वाणी ३५ गुणों से युक्त रहती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है और जो समस्त जगत के जीवों को उपदेश देते हैं, ऐसे अरिहन्त परमात्मा को मैं तन, मन, वचन और काया से प्रणाम करता हूँ।

राजा श्रीपाल ने इस स्तुति में अरिहन्त की वाणी को ३५ गुणों से युक्त बतलाया है। अतः पाठकों की जानकारी के लिये वे ३५ गुण यहाँ अंकित किये देते हैं- (१) जिस स्थान में जो भाषा बोली जाती हो, वह भाषा अर्ध मागधी सहित हो (२) ऐसे उच्च स्वर में उपदेश देते हों, कि एक योजन के विस्तार में बैठे हुए सब जीव समान रूप से सुन सकें (३) ग्रामीण तुच्छ भाषा न बोलकर प्रौढ़ भाषा बोलें (४) मेघ गर्जना की भाँति वाणी में गम्भीरता हो (५) विवेक और सरलता पूर्वक ऐसी वाणी बोलें, जिससे श्रोताओं को संतोष हो (७) सभी सुननेवाले यही समझे कि प्रभु हमें ही सम्बोधित कर यह बातें कह रहे हैं (८) वाणी में विस्तार-पूर्वक अर्थ की पुष्टि हो (९) वाणी में पूर्वापर विरोध न हो (१०) मुख से महत्त्व पूर्ण वचन निकलें, जिससे श्रोता लोग सहज ही कह सकें कि महापुरुषों के मुँह से ही ऐसी बातें निकलना सम्भव हैं (११) वाणी ऐसी हो कि जिससे सुननेवालों को सन्देह न हो (१२) व्याख्यान ऐसा हो कि जिसमें खोजने पर भी दोष न मिल सके। (१३) सूक्ष्म और कठिन विषयों पर भी इस तरह बोलें कि श्रोतागण तुरन्त ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझ जायें (१४) बातें प्रस्तावोचित हों (१५) षट्द्रव्य, नवतत्त्वादिक के स्वरूप को पुष्ट करत हुए ; अपेक्षा युक्त विवक्षित बातें कहें (१६) विषय, सम्बन्ध, प्रयोजन और अधिकार का विचार कर बातें कहें (१७) वाणी पद-रचना से युक्त हो (१८) नवतत्व और षट्द्रव्य का स्वरूप चातुर्यता-पूर्वक कहें (१९) बातों में ऐसी स्निग्धता और मधुरता हो कि सुनने वाले को घी गुड़ से भी अधिक मधुर प्रतीत हो (२०) ऐसी चतुराई से बातें कहें, जिसमें किसी को यह ख़याल न हो, कि मेरा भण्डाफोड़ कर रहे हैं (२१) धर्म और अर्थ से युक्त बातें बोले (२२) हर एक बातों में दीपक की भाँति प्रकाश कारी अर्थ रहे (२३) किसी बात में पर निन्दा और आत्म प्रशंसा के भाव न हों (२४) ऐसी भाषा हो, जिसे सुननेवाला तुरन्त ही समझ जाय की ये सर्वगुण-सम्पन्न हैं (२५) वाक्यों में कर्ता, कर्म, क्रिया, लिंग, कारक, काल और विभक्ति की अशुद्धियाँ न हों, (२६) ऐसी बातें हों, जिससे सुननेवाले को विस्मय-आश्चर्य हो, (२७) स्वस्थ चित्त से धीरे-धीरे बोले—शीघ्रता न करें। (२८) बोलने में अधिक समय न लगे (२९) बातों से किसी के मन में भ्रांति उत्पन्न न हो, (३०) ऐसी वाणी हो, जिसे वैमानिक, भवनपति, प्रभृति देव मनुष्य और तिर्यञ्च सभी अपनी भाषा में सरलता-पूर्वक समझ सकें, (३१) ऐसी बातें हो, जिससे शिष्यों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेष बुद्धि उत्पन्न हो, (३२) पद के अर्थ अनेक प्रकार से बतलायें, (३३) वाणी साहसिकता-पूर्वक हो, (३४) पुनरुक्ति दोष न हो, (३५) ऐसी बातें हों, जिससे सुननेवाले को जरा भी खेद या श्रम न हो। इस तरह की अपूर्व वाणी बोलने वाले संसार पर उपकार करनेवाले परम ऐश्वर्यवान्, सर्वगुण सम्पन्न, सर्वदोष रहित, पुण्य प्रकृति के बलसे, जन्म से ही देव इन्द्रादि के द्वारा पूजित होने वाले अरिहन्त भगवान को बारम्बार नमस्कार कर और उनके रूप को हृदय में धारण कर राजा श्रीपाल ने सिद्ध पद की स्तुति आरम्भ की।

सिद्ध पदका वर्णन

जिन सिद्ध परमात्मा ने चौदहवें गुणठाणे के अन्त में केवल एक समय की अवधि में प्रदेशान्तर को स्पर्श किये बिना ही मानव शरीर की त्रिभाक् न्यून अवगाहना-ऊँचायी द्वारा सिद्धि स्थान को प्राप्त किया है, उन सिद्ध परमात्मा को मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ।

पूर्व-प्रयोग, गति-परिमाण, बन्धन-छ्द और असंग-क्रिया द्वारा, जो एक समय में सात राज पर्यन्त गति कर समश्रेणी में उत्पन्न हुए हैं, उन सिद्ध परमात्मा को मैं पुनः पुनः वन्दन करता हूँ।

यहाँ, हमारे पाठकों को यह शंका हो सकती है, कि सर्व कर्म रहित होने पर भी जीव किस निमित्त को प्राप्त कर यहाँ से सिद्धिशिला तक जाता है? यह शंका स्वाभाविक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। शास्त्रकारों ने इसके समाधान के लिये चार दृष्टान्त दिये हैं, वे यह हैं :—

जीव के उर्ध्वगमन का पहला कारण पूर्व प्रयोग है। धनुष पर बाण चढ़ा कर उसे छोड़ना पूर्व प्रयोग होता है और बाद को वह अपने ही आप लक्ष्य स्थान को पहुँच जाता है। ठीक इसी तरह यह जीव भी सब कर्मप्रकृति के बन्ध, उदय, उदिरण और सत्ता का क्षय कर लेता है, तब वह उर्ध्व गमन करता है। इसे ही जीव का पूर्व प्रयोग समझना चाहिये। दूसरा कारण गति परिणाम है। जिस प्रकार अग्नि से निकला हुआ धुआँ सदा ऊपर की ही ओर जाता है, उसी प्रकार जीव की गति भी सदा ऊपर को ही ओर होती है। इसीलिये वह शरीर से अलग होते ही ऊँचे चला जाता है। तीसरा कारण बन्धन-छेद है। एरंडके फल पकने पर धूप के कारण जब फटते हैं, तब ऊपर की ओर उछलते हैं; क्योंकि उस वक्त वे बँधे रहते हैं। बन्धन का छेद होते ही वे ऊपर की ओर जाते हैं। यही गति जीव की भी है। जीव अनादि काल से कर्म-बन्धन में बँधा रहता है। ज्योंही वह कर्म-प्रकृति से मुक्त होता है—आत्मा और पुद्‌गल का अनादि सम्बन्ध छिन्न हो जाता है त्योंही वह ऊपर की ओर चला जाता है। इसी को बन्धन छेद कहते हैं। चौथा कारण असंग-क्रिया है। कुम्हार पहले दण्ड से चक्र को घुमाता है, फिर वह अपने आप ही घूमा करता है। उसी प्रकार यह जीव भी असंग क्रिया के बल से, सर्व-मल रहित हो, उपाधि के कारणमात्र नष्ट हो जाने पर ऊँचाई की ओर गमन करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५ लाख योजन प्रमाण निर्मल सिद्ध शिला के ऊपर एक योजन जानेपर लोकान्त मिलता है। उस योजन के २४वें हिस्से यानी एक कोस के छठें हिस्से—३३३ १/३ धनुष जितनी हो अवगाहना रह जाती है। इस सिद्धिस्थान में एक-एक सिद्धिका आश्रय मान कर जिनकी सादि अनन्त स्थिति है और सर्व सिद्धिका आश्रय मान कर जिनकी अनादि अनन्त स्थिति है—अर्थात् जहाँ जानेपर फिर उन्हें संसार में आना नहीं पड़ता, ऐसे अविनाशी सुख को जिन्होंने प्राप्त किया है, उन सिद्ध भगवन्त को मैं बारंबार वन्दना करता हूँ।

एक जंगली मनुष्य राजा की कृपा से शहर में पहुँचता है और वहाँ सब प्रकार के सुखों का उपभोग कर वह जंगल को लौट आता है और जंगल में उसके इष्ट-मित्र जब उससे पूछते हैं कि शहर के सुख कैसे हैं तब स्वयं भुक्तभोगी होने पर भी वह जंगली उनका वर्णन नहीं कर सकता; क्यों कि जंगल में उसे ऐसी कोई चीजें ही नहीं दिखायी देतीं जिनसे वह शहर के सुखों की तुलना करे। इसी प्रकार केवली भगवान केवल-ज्ञान द्वारा सिद्ध के सुखों को जानते हैं, किन्तु संसार में कोई भी सुख ऐसा नहीं दिखायी देता, जिससे उस उपाधि रहित सुख की तुलना की जा सके। इस प्रकार के उपाधि रहित सुख के भोक्ता सिद्ध परमात्मा को मैं त्रिविध वन्दन करता हूँ।

जिस प्रकार एक दीपक की ज्योति में दूसरे दीपक की ज्योति समा जाती है, उसी प्रकार एक सिद्धकी अवगाहना में उतनी ही अवगाहनावाले या उससे न्यूनाधिक अवगाहनावले अनन्त सिद्ध रहते हैं, फिर भी वहाँ संकीर्णता होती नहीं। इस प्रकार रहनेवाले, एवं इस संसार की समस्त उपाधियों से मुक्त, सहज समाधि को प्राप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करनेवाले सिद्ध परमात्मा को मैं नमस्कर करता हूँ। उनकी स्तवना करता हूँ और उनकी शरण स्वीकार कर उनके समान होने की अभिलाषा करता हूँ।

जो अनन्त, अपुनर्भव, अशरीरी, अव्याबाध और सामान्य एवं विशेष उपयोगों से युक्त हैं। जो अनन्तगुणी; निर्गुणी किंवा ३१ गुणवाले या आठ कर्मों के क्षय से उत्पन्न होनेवाले आठ गुणों से युक्त हैं। जो अनन्त, अनुत्तर, अनुपम, शाश्वत और सदानन्द ऐसे सिद्ध-सुख प्राप्त कर चुके हैं, वह सिद्ध भगवन्त मुझे शिव सुख देवें। राजा श्रीपाल ने इस प्रकार सिद्ध परमात्मा की स्तुति कर आचार्य महाराज की स्तुति करना आरम्भ की।

आचार्य पदका वर्णन

जिन्होंने ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार रूप पाँच आचारों का निरतिचार भाव से शुद्धता-पूर्वक पालन किया है और अन्य मुनियों से पालन कराते हैं, जो शुद्ध जिनोक्त दयामय सत्य धर्म को उपदेश द्वारा प्रकाशित करते हैं, उन आचार्य महाराज को मैं नमस्कार करता हूँ और उनसे ऐसे शुद्ध धर्म की प्रेम-पूर्वक याचना करता हूँ।

जो छत्तीस-छत्तीसी अर्थात् १२९६ गुणों से युक्त हैं, युग प्रधान हैं, जगत् के जीवों को निरन्तर उपदेश देते हैं, मोह-प्रेम के उत्पन्न करने वाले हैं, एक क्षण के लिये भी क्रुद्ध नहीं होते, ऐसे आचार्य महाराज को मैं विनय-पूर्वक वन्दन करता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निरन्तर जो अप्रमत्त दशा में रहते हैं, धर्मोपदेश देने में सावधानी रखते हैं, चार प्रकार की विकथाओं से दूर रहते हैं, पच्चीस कषायों को सर्वथा त्याग कर देते हैं, जो क्लेश रहित, मलीन परिणाम रहित और माया-प्रकट रहित हैं; ऐसे आचार्य महाराज को मैं बारंबार नमस्कर करता हूँ।

जो गच्छ में मुनि आदि को सारणा (क्रिया अनुष्ठानादि करने में कोई भूल होती हो तो उसे याद दिलाना) वारणा, (अशुद्ध क्रिया या अयोग्य भाषण करे तो उसे वारण करना) चोयणा (धर्म-क्रिया में और ज्ञानाभ्यास में मुनिओं को प्रेरित करना) पडिचोयणा, (किसी मुनि को ज्ञान-क्रियादि में प्रमाद करते देख बारंबार प्रेरित करना) प्रभृति द्वारा मुनियों को धर्मकार्य में लगाये रहते हैं, उत्तरोत्तर पाटको धारण करते हैं और जो गच्छ के आधार स्तम्भरूप हैं, ऐसे आचार्य महाराज पर मेरा आन्तरिक प्रेम है।

श्रीजिनेश्वररूपी सूर्य और सामान्य केवली रूपी चन्द्र अस्त होने पर भी अज्ञान-अन्धकार को टालने के लिये जो दीपक के समान हैं, तीनों भवन के पदार्थों का स्वरूप प्रकट करने में जो परम चतुर हैं—समर्थ हैं ऐसे आचार्य चिरंजीवी अर्थात् दीर्घायुषी हों और उनके द्वारा भव्यजीवों का अपरिमित उपकार हो।

जो देश, कुल, जाति और रूपादिक गुणों से सम्पन्न हैं, जो सूत्रार्थ के ज्ञाता हैं, परोपकार परायण होने के कारण तत्वोपदेश के दाता हैं, पाप भार से पीड़ित होने के कारण संसार रूपी गहरे अन्धकूप में गिरनेवाले प्राणियों को जो बचाते हैं। माता-पिता और बन्धुओं से भी जो अधिक हित-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिन्तन हैं। जो अनेक लब्धियों से समृद्ध अतिशयवन्त, शासन को सुशोभित करने वाले और राजा की भाँति निश्चिन्त हैं ऐसे आचार्य महाराज को मैं त्रिविध नमस्कार करता हूँ और निरन्तर उनके दर्शन की, उनके उपदेश की और उनके संग की अभिलाषा करता हूँ। इस प्रकार श्रीपाल ने आचार्य महाराज की स्तुति करने के बाद उपाध्याय महाराज की स्तुति करना आरम्भ किया।

उपाध्याय पदका वर्णन

निरन्तर जो द्वादशांगीका ध्यान करते हैं, उसके अर्थ को पूर्ण रूप से समझते हैं, एवं उसके रहस्य को धारण करते हैं, सूत्रार्थ का विस्तार करने के लिये उत्सुक रहते हैं ऐसे उपाध्याय महाराज को मैं उत्साह-पूर्वक नमस्कर करता हूँ।

अर्थदाता आचार्य होते हैं और सूत्रदाता उपाध्याय होते हैं। इस प्रकार के दान विभाग से जो निरन्तर शिष्यगणों को सूत्रार्थ का दान करते हैं, जो तीसरे जन्म में मुक्ति प्राप्त करनेवाले हैं ऐसे उपाध्याय महाराज को मैं नमस्कार करता हूँ।

भगवन्त, गणधर महाराज या आचार्य यदि किसी मूर्ख मनुष्य को दीक्षा दे उपाध्याय के पास अध्ययन करने भेजते हैं, तो पत्थर पर अंकुर जमाने की भाँति उसके हृदय में भी ज्ञानांकुर जमा देते हैं—उसे विचक्षण बना देते हैं—ऐसे सर्व पूजित, सर्व सूत्रार्थ के ज्ञाता उपाध्याय महाराज को मैं नमस्कार करता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस प्रकार किसी राज्य के युवराज निरन्तर अपने राज-काज की चिन्ता किया करते हैं उसी प्रकार जो निरन्तर गच्छ स्थित मुनि आदि के हित की चिन्ता किया करते हैं ऐसे उपाध्याय को मैं सदा सर्वदा नमस्कार करता हूँ, क्योंकि उन्हें नमस्कार करने से सब प्रकार के भव-भय और शोक नष्ट हो जाते हैं।

बावन अक्षर रूप, बावना चन्दन के रस के समान अपने वचनों द्वारा जो भव्य जीवों के अहित रूप ताप का सर्वथा नाश करनेवाले हैं जो जैन शासन को उज्ज्वल करनेवाले हैं ऐसे उपाध्याय महाराज को मैं त्रिविध नमस्कार करता हूँ।

मोहरूप सर्प के काटने से जिनका ज्ञान-प्राण नष्ट हो गया है ऐसे जीवों को जो जांगुली-मंत्र वादी की भाँति अपूर्व ज्ञान सुना कर नया चैतन्य प्रदान करते हैं, अज्ञान रूपी व्याधि से पीड़ित प्राणियों को जो धन्वन्तरी वैद्य की भाँति श्रुतज्ञान रूप उत्तम रसायन देकर व्याधिमुक्ति सज्ञान करते हैं, गुणरूपी वन को विनाश करनेवाले, मद रूपी गज को दमन करने के लिये जो अंकुश समान ज्ञानदान करते हैं ऐसे उपाध्याय का मैं निरन्तर ध्यान करता हूँ। अज्ञान द्वारा जो लोग अन्ध हो जाते हैं उनके नेत्रों को ज्ञानरूपी शस्त्र क्रिया द्वारा जो खोल दिया करते हैं, सब तरह के दानों को अस्थायी समझकर अन्ततक साथ देनेवाले ज्ञान का ही जो दान करते हैं। ऐसे उपाध्याय महाराज को मैं शुद्ध अन्तः करण से सादर नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार उपाध्याय पद की स्तुति करने के पश्चात् राजा श्रीपाल मुनिपद का चिन्तवन करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिपद का वर्णन

ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूपी अनुपम रत्नमयी द्वारा जो मोक्ष की साधना करते हैं। वहीं साधु-यति कहलाते हैं। ऐसे साधु, जिस प्रकार वृक्ष पर लगे हुए पुष्प पर भ्रमर बैठता है और उसे किसी प्रकार की हानि न पहुँचा कर धीरे-धीरे उसका रस-शोषण कर अपनी आत्मा को सन्तुष्ट कर लेता है, उसी प्रकार अनेक घरों में गोचरी के निमित्त जाने पर भी किसी को पीड़ा न हो, कष्ट न हो और ४२ दोषरहित शुद्धमान आहार ग्रहण करते हैं और उसी में निर्वाह करते हैं। उन यति मुनिराज को मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ।

पञ्चेन्द्रियों को जो निरन्तर अपने अधीन रखते हैं, छह कायके प्राणियों का प्रतिपालन करते हैं और सत्तर प्रकार के संयमों की आराधना करते हैं ऐसे दयावान यति मुनिराज को मैं वन्दन करता हूँ

अटारह हजार शिलांग रथके वहन करने वाले और अचल आचार युक्त चारित्रवाले यति-मुनिराज को प्रेम-पूर्वक वन्दन करने से यह मनुष्य जन्म पवित्र होता है।

नव विध ब्रह्मचर्य गुप्तिके पालने वाले और बारह प्रकार के तप करने में ऐसे वीर, यति को वन्दन करने का सुयोग, पूर्व जन्म के पुण्य उदय हुए बिना प्राप्त नहीं होता।

छेदन, घर्षण, ताड़न और तपाने आदि के द्वारा जिस प्रकार सुवर्ण की विशुद्धता सिद्ध होती है और उसका रूप बढ़ता है, उसी प्रकार यतिराज अपने कठिन आचारों के कारण उत्तरोत्तर उच्च से उच्चतर स्थान प्रात करते जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे यतिराज को सर्वदा नमस्कार करना परम कर्तव्य है ; किन्तु इसके साथ ही देशकाल की दृष्टि से भी विचार करना उचित है ; क्योंकि महाविदेह क्षेत्र में विचरण करनेवाले यति जैसे होते हैं, वैसे यतियों का दर्शन यहाँ दुर्लभ ही समझना चाहिये। इसी प्रकार तीसरे या चौथे आरे के समान आज पाँचवें आरे में वैसे यतियों का मिलना असम्भव है। देश-कालानुसार कामिनी और कञ्चन से दूर रहनेवाले संयमी यति ही इस समय पूजनीय है।

आर्त्त और रौद्र ध्यान त्यागकर धर्म और शुक्ल ध्यान का ध्यान करनेवाले, ग्रहण और आसेवना रूपी दो प्रकार की शिक्षाओं का अध्ययन करनेवाले, तीन गुप्तिओं से गुप्त, तीन शल्यों से रहित, जिनाज्ञाका पालन करने वाले, चार कषाय का त्याग करनेवाले, दानादि चार प्रकार के धर्म-का उपदेश देने वाले, पाँच प्रमादों के परिहारी, पाँच समितियों का पालन करने वाले, हास्य प्रभृति षट्कसे मुक्त, छह व्रतों को धारण करनेवाले, सात भयों को जीतने वाले, आठ मदों को टालनेवाले, अप्रमत्त भाव का सेवन करनेवाले, दस प्रकार के यति धर्म का पालन करनेवाले, यति की बारह पड़िमाओं का वहन करनेवाले और सर्वत्र विचरण करनेवाले यति-मुनिराज की मैं त्रिविध बन्दना करता हूँ। इस प्रकार साधु पद की स्तुति करने के पश्चात् राजा श्रीपाल ने दर्शन पद का स्तवन करना आरम्भ किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शन पदका वर्णन

शुद्ध देव अर्थात् अठारह दोष रहित अरिहन्त, शुद्ध गुरु यानी पंच महाव्रत का पालन करनेवाले यति और शुद्ध धर्म अर्थात् दयायुक्त प्रधान धर्म। इन तीनों तत्त्व की भली प्रकार परीक्षा कर उन पर दृढ़ श्रद्धा करना इसी को सम्यग् दर्शन कहते है।

कर्म रूप जो मल अर्थात् अनन्तानुबन्धी चार कषाय और तीन प्रकार की दर्शन मोहनी—इस सात प्रकृतियों के उपशम से, क्षयोपशम से किंवा क्षय होने से उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक नामक समकित की प्राप्ति होती है। ऐसे समकित की प्राप्ति होने से ही जैनधर्म पर दृढ़ अनुराग होता है, इसलिये मैं शुद्ध समकित को नमस्कार करता हूं।

उपशम समकित, भव चक्रवाल में यानि जन्म भर में अधिक से अधिक पाँच बार प्राप्त होता है। वह एक बार तो अनादि मिथ्यात्वी अवस्था में प्राप्त होता है और चार बार उपशम श्रेणी के चिन्तवन से प्राप्त होता है। क्षयोपशम समकित असंख्यात बार प्राप्त होता है अर्थात् अनेक बार आता और जाता है, क्षायिक समकित केवल एक ही बार प्राप्त होता है, क्योंकि वह आने के बाद फिर कभी नहीं जाता मोक्षपर्यन्त अविच्छिन्न रहता है। इस तरह के तीनों प्रकार की समकित को मैं नमस्कार करता हूं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस समकित गुण के बिना ज्ञान अप्रमाण है—अज्ञान रूप है, चारित्र रूपी वृक्ष फलीभूत नहीं होता अर्थात् उसके वास्तविक फलकी प्राप्ति नहीं होती और जिसके बिना निर्वाण सुखकी प्राप्ति होती नहीं, ऐसे प्रबल समकित गुण को मैं बारंबार वन्दन करता हूँ।

सद्दहणा, लिंग, लक्षण, भूषण प्रभृति ६७ बोल—वचनों से जिसकी सम्पूर्ण व्याख्या हो सकती है—जिसका स्वरूप समझाया जा सकता है ऐसे शिवमार्ग की अनुकूलता कर देनेवाले समकितदर्शन को मैं निरन्तर नमस्कार करता हूं।

आयु को छोड़कर सातों कर्मों की स्थिति जब एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपम के अन्दर हुई हो और अर्ध पुद्गल परावर्तन से भी संसार कम रहा हो, तब यथाप्रवृत्ति, अपूर्व और अनिवृत्ति यह तीन करण करने से राग-द्वेष की निबिड़ ग्रन्थी का भेदन होता है और तभी जींव समकित को प्राप्त करता है। यही समकित, धर्मरूपी वृक्ष का मूल है, धर्मपुरी का द्वार है, धर्म प्रसाद किले की नींव है, समस्त धर्मों का आधार है, उपशम रस का भाजन है, और गुण रूपी रत्नों का भण्डार रूप है। अतएव इसे मैं विविध नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार दर्शन पद की स्तुति करने के बाद राजा श्रीपाल ने ज्ञान पद की स्तवना करना आरम्भ किया।

ज्ञान पदका वर्णन

सर्वज्ञ प्रणीत आगममें बतलाये हुए यथा स्थिति तत्वों के शुद्ध बोध को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। इस ज्ञान के बिना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भव्यात्मा को भक्ष्या-भक्ष्य का स्वरूप, पेयापेय का विचार और कृत्याकृत्यका विवेक नहीं हो सकता। निरवद्य और दूषण रहित आहार भक्ष्य है। अभक्ष्य, अनन्तकाय, सावद्य और दूषित आहार अभक्ष्य हैं। दूध, पान, छाछ–मट्ठा आदि पदार्थ पीने योग्य हैं। ताड़ी, मदिरा आदि मादक पदार्थ त्याज्य है। यह सब बातें सम्यग् ज्ञान से ही जानी जा सकती हैं। इसीलिये यह ज्ञान सबका आधार भूत हैं।

"प्रथम ज्ञान और फिर दया" यह सिद्धान्त का कथन है; क्योंकि ज्ञान के बिना जीव और अजीव के यथार्थ स्वरूप का बोध नहीं होता और ऐसी अवस्था में दया–धर्म का पालन होना कठिन हो पड़ता है। इसलिये यह अपूर्व ज्ञान अतीव वन्दनीय है। उसकी निन्दा कभी न करनी चाहिये ; क्योंकि मोक्ष-सुख का रसास्वादन ज्ञानी ही कर पाते हैं, अज्ञानी नहीं।

सिद्धान्तोक्त सभी क्रियायों का मूल श्रद्धा है और श्रद्धा का मूल ज्ञान है ; क्योंकि ज्ञान के बिना वास्तविक श्रद्धा नहीं होती। यदि होती है तो वह स्थायी नहीं रहती। इसलिये सब गुणों के आधारभूत ज्ञान को सदैव धारण करना चाहिये। यही ज्ञान सदा सर्वदा सबके लिये वन्दनीय और ग्रहण करने योग्य है।

मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यव और केवल, इन पांच ज्ञानों में, लोकालोक प्रकाशक उत्कृष्ट ज्ञान तो केवलज्ञान ही है, किन्तु उसके द्वारा जाने हुये भावों को प्रगट करनेवाला सम्यक् ज्ञान है। यही ज्ञान, स्व और परके यथार्थ रूप को प्रकट करता है, समस्त संसार के जीवों का कल्याण करनेवाला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। दीपक की भाँति अज्ञानान्धकार को दूर करने वाला है और इसके उपकारों को देखते हुए इसे सूर्य, चन्द्र और मेघ की भी उपमा दी जा सकती है।

ऐसे सर्वोत्तम ज्ञान की प्राप्ति के लिये भव्य जीवों को ज्ञान का ही पठन-पाठन, श्रवण मनन, पूजा अर्चना और आलेखन करना चाहिये। जिससे ज्ञानावरणीय कर्म नष्ट हो जायें और हाथ में रखे हुए आँवले की भाँति तीनों लोक के भाव जाने जा सकें। साथ ही जिस सम्यग् ज्ञान से इस संसार में भी मान पूजा और प्रशंसा की प्राप्ति होती है, उस ज्ञान का आदर पूर्वक सदा ध्यान करना चाहिये।

इस तरह सम्यग्ज्ञान की स्तुति करने के बाद राजा श्रीपाल ने चारित्र पद की स्तुति करना आरम्भ किया।

चारित्र पद वर्णन

चारित्र के दो भेद हैं— (१) सर्वविरति और (२) देशविरति। सर्वविरति चारित्र यतियों में और देशविरति चारित्र गृहस्थों (श्रावकों) में पाया जाता है। जिस चारित्र के कारण इस संसार में सर्वत्र विजय प्राप्त होता है, उस चारित्र को मैं त्रिविध नमस्कार करता हूँ।

छह खण्डकी ऋद्धि के स्वामी चक्रवर्ती भी तृण की भाँति अपनी समस्त ऋद्धियों का त्याग कर अक्षय सुख के कारणभूत जिस चारित्र को स्वीकार करते हैं, उस चारित्र ने मेरे हृदय पर भी अधिकार कर लिया है। चारित्र को स्वीकार करनेवाला एक दरिद्र भी इन्द्रों और नरेन्द्रों द्वारा पूजित होता है। सांसारिक अवस्था में प्रार्थना करने पर भी जो लोग दृष्टि उठाकर नहीं देखते, वही लोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यति-अवस्था में आ-आकर चरणों में शिर झुकाते हैं। ऐसे प्रत्यक्ष फल देनेवाले चारित्र को मैं वन्दन करता हूँ।

जिस चारित्र के बारह मास के पर्याय से अनुत्तर विमान के सुख को भी भुलानेवाले उत्तम सुखकी (उत्तम होने का कारण यह है कि अच्छे से अच्छा अनुत्तरविमान का सुख भी पौद्गलिक और नाशवन्त होता है; किन्तु बारह मास के शुद्ध चारित्र से प्राप्त होने वाला समाधि सुख अपौद्गलिक– आत्मिक होता है।) प्राप्ति होती है, साथ ही जिस चारित्र के प्रभाव से उज्ज्वल मोक्ष-सुख प्राप्त किया जा सकता है, उस चारित्र को मैं नमस्कार करता हूं।

ज्ञान और दर्शन गुण परस्पर सहायक हैं। ज्ञान से श्रद्धा गुण प्रकट होता है और श्रद्धा रूप दर्शन गुण से अज्ञान ज्ञान के रूप में परिणत हो जाता है; किन्तु इन दोनों का फल विरति चारित्र है। ज्ञान दर्शन की प्राप्ति से यदि विरति गुण प्राप्त किया जा सके, तो उसे सफल समझना चाहिये। अन्यथा वह वन्ध्य—निष्फल है। चारित्र के साथ रहने पर ही वह पूर्ण फलदायी होता है, इसलिये चारित्र ही सर्वश्रेष्ठ है। शास्त्रों में चारित्र के सामायिक आदि पाँच भेद बतलाये गये हैं। उसी चारित्र को अरिहन्तादिक ने स्वीकार किया है, उसकी आराधना की है, उसे सम्यक् रीत्या प्ररूपित किया है, और अनेक भव्य जीवों को दिया। चारित्र के अनन्त गुण होने पर भी शास्त्रकारों ने सत्रह और दश प्रकार से उसका वर्णन किया है। पाँच समिति, तीन गुप्ति, क्षमादिक गुणों का सेवन, मैत्री प्रमुख भावना चतुष्टयों का चिन्तन, और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिसह उपसर्गादिके सहन प्रभृति द्वारा उसकी पूर्णता प्राप्त होती है। ऐसे चारित्र को मैं त्रिविध नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार चारित्र पद की स्तुति कर राजा श्रीपाल ने अन्तिम तप पद की स्तुति आरम्भ की।

तप पदका वर्णन

अरिहन्त परमात्मा जो जन्म ही से तीन ज्ञान के जानकार थे और जो यह जानते थे, कि इसी जन्म में हमारी सिद्धि होनेवाली है, फिर भी कर्मों का क्षय करने के लिये, उन्होंने जिस तप का आरम्भ किया, उस शिव-तरु के मूल रूप तपको मैं नमस्कार करता हूँ।

क्षमा संयुक्त भाव से जिस तप को करने से पूर्वके निकाचित कर्म भी क्षय हो जाते हैं, वही तप वास्तव में सेवन करने योग्य है। जैन शासन की प्रभावना करने में भी जो तप सहाय भूत होता है और जिसके पालन से जैन शासन की उत्तमता को प्राप्त करता है, उस तप को मैं प्रणाम करता हूँ।

जिस तप के प्रभाव से आमौषधी प्रभृति अनेक लब्धियाँ एवं अष्ट महासिद्धि और नव निधियों की प्राप्ति होती है, उस तप को मैं सादर प्रणाम करता हूँ।

तप पद की आराधना से प्राप्त होनेवाली लब्धि आदि के नाम जानने की पाठकों को स्वाभाविक ही इच्छा होगी, अतएव उनके नाम नीचे दिये जा रहे हैं :—

२८ लब्धियाँ—(१) आमौषधी—केवल हाथ के स्पर्श करने से ही रोगी रोग मुक्त हो जाय। (२) विप्रोषधि—मल-मूत्र से रोग नष्ट हो जाना। (३) जल्लोषधि—श्लेष्मा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औषधि का काम करे। (४) मलौषधि—शरीर के मलमात्र औषधि के काम करे। (५) सर्वौषधि—रोम और नखादिक से सब तरह के रोग नष्ट हो सकें। (६) संभिन्नश्रोत–बाजे आदि सुनने की शक्ति सब इन्द्रियों को एक साथ ही प्राप्त होना (७) अवधिज्ञान—अवधिज्ञान की प्राप्ति होना (८) ऋजुमति—मनः पर्यव ज्ञान का होना। (९) विपुलमति-–मनः पर्यव ज्ञान का हेना (१०) चारण—जंघाचारण और विद्याचारणपने की प्राप्ति होना (११) आसिविष—दूसरों का विष उतारने की शक्ति आ जाना (१२) केवलज्ञान–केवलज्ञान की प्राप्ति (१३) गणधर—गणधरत्व की प्राप्ति (१४) श्रुतज्ञान-पूर्वधरपने की प्राप्ति (१५) तीर्थंकर–समवसरण की रचना कर तीर्थंकर के समान महिमा दिखलाना (१६) चक्रवर्ती—चक्रवर्ती के समान राजऋद्धि दिखलाना (१७) बलदेव—बलदेवकी ऋद्धि प्राप्त होना (१८) वासुदेव की ऋद्धि प्राप्त होना (१९) क्षीराश्रव, मध्वाश्रव किंवा घृताश्रव—बातों में दूध और मिश्री से भी अधिक मधुरता होना (२०) कोष्टक—अन्तः करण में समस्त (भाव) ऋद्धियों का परिपूर्ण होना (२१) पदानुसारिणी-–एक पद के सहारे अनेक पदों को जानने की शक्ति होना (२२) बीजबोध—वस्तु का यथार्थ रूप जानने की शक्ति (२३) तेजोलेश्या—तेजोलेश्याका प्राप्त होना (२४) शीतलेश्या-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

–शीतलेश्या का प्राप्त होना (२५) आहारक—शरीर के आहारक बना सकना (२६) वैक्रिय—शरीर को वैक्रिय कर सकना (२७) अक्षीण महानसी- रसोई के पात्र में अंगूठा रखने से हजारों मनुष्यों को भोजन कराने की शक्ति (२८) पुलाक चक्रवर्ती की सेना को भी पराजित करने की शक्ति।

तप के प्रभाव से प्राप्त होनेवाली अष्टसिद्धियों के नाम ये हैं—(१) अणिमा—छोटे से छोटे छिद्र में प्रवेश करने योग्य शरीर बना सकना या कमल-नाल में प्रवृष्ट हो, चक्रवर्ती की सिद्धि को विस्तारित करने की शक्ति प्राप्त करना (२) महिमा--मेरु से भी बड़ा रूप धारण करने की शक्ति (३) लघिमा--वायु से भी हलकाशरीर बना सकना (४) गरिमा—शरीर को वज्र से भी भारी बना सकना (५) प्राप्ति—पृथ्वीपर रहनेपर भी मेरु के अग्रभाग किंवा सूर्य के किरणों को स्पर्श करना (६) प्राकाम्य—जमीन पर चलने की तरह पानीपर चलना और जमीन में पानी की भाँति गोते लगाना। (७) ईशत्व--तीर्थंकर, किंवा इन्द्र की तरह ऐश्वर्य भोग करना (८) वशीत्व—प्राणी मात्र को वशीभूत करने की शक्ति होना।

नव निधि के सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त है कि इनकी प्राप्ति चक्रवर्तियों को हुआ करती है। जिन पाठकों ने भरत प्रभृति चक्रवर्तियों का चरित्र पढ़ा या सुनाहोगा, निधियों का स्वरूप आसानी से समझ सकेंगे। अब हम पुनः तप पद का वर्णन करते हैं।

तप अपूर्व कल्पवृक्ष है। मोक्ष-सुख की प्राप्ति इसका फल है। देवता, मनुष्य, इन्द्र किंवा चक्रवर्ती की ऋद्धियाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके पुण्य समान हैं। उपशम रस उसका अमूल्य मकरन्द सुगन्ध है। इस तरह के कल्पवृक्ष रूपी तप को मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ।

इस तप के छह बाह्य और छह अभ्यन्तर मिला कर बारह अंग हैं। यह उत्तरोत्तर विशेष गुणकारी हैं। जिस प्रकार अग्नि में तपाने से स्वर्ण का मैल दूर हो जाता है, उसी प्रकार तपश्चर्या के बल से जीव में लगा हुआ कर्मरूपी किटक दूर हो जाता है, फलतः जीवात्मा कर्म रहित दशा को प्राप्त करता है। कर्मों की निर्जरा करने का अपूर्व साधन तप ही है, किन्तु वह समता सहित और आशंसा रहित होने से ही यथार्थ फल दायी होता है। इसके द्वारा असाध्य से असाध्य लौकिक कार्य भी क्षणमात्र में सिद्ध हो जाते हैं। अतएव इस तप पद को मैं त्रिविध नमस्कार करता हूँ।

राजा श्रीपाल इस प्रकार नव पद के ध्यान में लीन हो गये। अन्त में आयुष्य पूर्ण होने पर जब उनका शरीरान्त हुआ तब वे नवें आनत देवलोक में देवता के रूप में उत्पन्न हुए। मैना प्रभृति नव रानियाँ और उनकी माता कमलप्रभा का शरीरान्त होनेपर वे भी वहीं देव रूप में उत्पन्न हुईं। वहाँ पर वे देवत्त्व के सुख उपभोग कर, आयुष्य पूर्ण होने पर पुनः मनुष्य होंगे। इसी प्रकार चार बार मनुष्यत्व और चार बार देवत्त्व प्राप्त कर, वे नवें जन्म में सिद्धि सुख अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आराधना विधि

शुभ मास, शुभ दिवस में गुरुमहाराज के पास विधिपूर्वक आयम्बिल ओली की तपस्या ग्रहण करे–उसके पश्चात् यह तप आसोज सुदि और चैत्र सुदि सप्तमी–यदि तिथि घटती हो छट्ठ, बढ़ती हो तो अष्टमी से पूनम तक नव आयम्बिल करना चाहिए–इस प्रकार एक वर्ष में दो बार करते हुए साढ़े चार वर्ष में नव ओली हो जायेगी।

नौ दिन तक देवसिय राइय प्रतिक्रमण दो समय पडिलेहन, गुरु मुख से पचक्खान करना चाहिए।

त्रिकाल देवपूजा, मध्याह्न में आठ थुई से देववन्दन, प्रत्येक दिन नवपद के नव चैत्यवंदन, जितने गुण हो उतने ही साथिये, प्रदक्षिणा एवं कायोत्सर्ग करना चाहिए। पचक्खाण पारने के चैत्यवंदन के पश्चात् आयम्बिल पुनः चैत्यवंदन, शयन-समय संथारा पोरिसी कहकर भूमि पर संथारा ऊपर सोना चाहिये–शीलव्रत पालन करना चाहिये।

ये नवपद जिनशासन में परम तत्त्वभूत हैं। नवपद का यन्त्र विद्याप्रवाद नाम के नौवें पूर्व से उद्घृत किया गया है; मैनासुन्दरी के समक्ष मुनिश्चन्द्र महाराज ने इस पवित्र यन्त्र की विधि इस प्रकार बताई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

।। श्री सिद्धचक्राराधन

नवपद अंक	जाप पद.	खमा.प्रद. स्वस्तिक संख्या.	काउसग्ग प्रमाण	गुणणु संख्या जाप प्रमाण.
१	ओं ह्रीं नमो अरिहंताणं	१२	१२ लोगस्स	२००० २० नवका०
२	ओं ह्रीं नमो सिद्धाणं।।	८	८	२०००
३	ओं ह्रीं नमो आयरियाणं	३६	३६	२०००
४	ओं ह्रीं नमो उवज्झायाणं	२५	२५	२०००
५	ओं ह्रीं नमो लोएसव्वसाहूणं	२७	२७	२०००
६	ओं ह्रीं नमो दंसणस्स	६७	६७	२०००
७	ओं ह्रीं नमो नाणस्स	५१	५१	२०००
८	ओं ह्रीं नमो चारित्तस्स	७०	७०	२०००
९	ओं ह्रीं नमो तवस्स	५०	५०	२०००

बे टंक प्रतिक्रमण, नव चैत्यवंदन, त्रिकाल पूजन, गुरुवन्दन,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विधि बीजकयन्त्र ॥

प्रकारान्तरे (२३००० अपेक्षाये) गुणणु संख्या.	देववन्दन.	पडिलेहण.	वर्ण.	वर्णानुसार आंबिलनुं द्रव्य
१२००	त्रण टंक	२ टंक	श्वेत (धोलो)	चोखा
८००	३ टंक	२ टंक	रक्त (लाल)	घउं
३६००	३ टंक	२ टंक	पीत (पीलो)	चण्या
२५००	३ टंक	२ टंक	नील (लीलो)	मग
२७००	३ टंक	२ टंक	श्याम (कालो)	अडद
५००	३ टंक	२ टंक	श्वेत (धोलो)	चोखा
५००	३ टंक	२ टंक	श्वेत (धोलो)	चोखा
१००० वा ६००	३ टंक	२ टंक	श्वेत (धोलो)	चोखा
२०० वा ६००	३ टंक	२ टंक	श्वेत (धोलो)	चोखा

विगेरे बिस्तार विधि आगल बतावाशे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यन्त्रविधि

मूल पीठ पर यन्त्रराज के मध्य में अर्हं बीजाक्षर को स्थापन करना। यह बीजाक्षर ॐकार के मध्य में स्थापन करना। इन दोनों ही मन्त्राक्षरों को ह्रींकार के मध्य में स्थापित करके ह्रींकार की ईकार को पीछे से घुमाकर दो कुंडलाकारों से ऊपर से तीनों बीजाक्षर उसके चारों ओर दिशाओं और विदिशाओं में अ आ इ ई उ ऊ ऋ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः इन सोलह स्वरों की स्थापना करनी; इस तरह लिखकर—

बाहर अष्टदल कमलाकार एक वलय (गोल) बनाना, उसमें क्रमशः पूर्व दिशा—ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यः स्वाहा, दक्षिण दिशा में—ॐ ह्रीं आचार्येभ्यः स्वाहा, पश्चिम दिशा में ॐह्रीं उपाध्यायेभ्यः स्वाहा, उत्तर दिशा में ॐ ह्रीं सव साधुभ्यः स्वाहा; आग्नेय विदिशा में—ॐ ह्रीं दर्शनाय स्वाहा, नेऋत्य विदिशा में—ॐ ह्रीं ज्ञानाय स्वाहा, वायव्य विदिशा में —ॐ ह्रीं चारित्राय स्वाहा, ईशान विदिशा में ॐ ह्रीं तपसे स्वाहा।

पहिले वलय के बाहर सोलह दल का कमलाकार दूसरा वलय बनाना; एकान्तर (एक-एक को छोड़कर) दल रूप कोष्टक में—क ख ग घ ङ, तीसरे में—च छ ज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

झ ञ, चौथे में—ट ठ ड ढ़ ण, पाँचवे में—त थ द ध न, छठे में—प फ ब भ म, सातवे में—य र ल व, आठवें में—श ह क्ष ज्ञ ; इन अक्षरों को लिखना, शेष आठों में ॐ नमो अरिहंताणं लिखना।

दूसरे वलय के बाहर सोलह कोष्टक वाला तीसरा वलय बनाना, एकान्तर रूप आठ कोष्टकों में क्रमशः आठ अनाहत विद्या दिशि विदिशी में लिखना और शेष आठ अन्तरों में १६ लब्धियाँ अर्थात् प्रत्येक कोष्ठक में दो-दो लब्धियाँ लिखनी चाहिये; इस तरह प्रदक्षिणा करती हुई तीन पंक्तियों में ४८ लब्धियाँ लिखना। ॐ.ह्रीं अर्हं नमो जिणाणं इत्यादि ४८ लब्धिपद जानना।

यन्त्र के सबसे ऊपर ह्रींकार लिखना, यन्त्र के बाहर ईंकार के तीन वलय देना और चौथे वलय के अन्त में 'क्रौं' अक्षर लिखना, परिधि पर आठ गुरु पादुका- – लिखना– (१) ॐ ह्रीं अर्हत्पादुकेभ्यो नमः (२) ॐ ह्रीं सिद्धपादुकेभ्यो नमः (३) ॐ ह्रीं आचार्य पादुकेभ्यो नमः। (४) ॐ ह्रीं पाठकपादुकेभ्यों नमः। (५) ॐ ह्रीं परमगुरु पादुकेभ्यों नमः (६) ॐ ह्रीं अदृष्टगुरुपादुकेभ्यो नमः (७) ॐ ह्रीं अनन्तगुरुपादुकेभ्यो नमः (८) ॐ ह्रीं अनन्तानन्तगुरुपादुकेभ्यो नमः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यन्त्र के आधे भाग से बायीं दायीं दो रेखाएँ खींच कर दोनों के जोड़ में कलश का आकार बनानाः उसके पश्चात् पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण चारों दिशाओं में– (१) जया (२) विजया (३) जयन्ती (४) अपराजिता तथा आग्नेय आदि विदिशाओं में क्रमशः (१) जम्भा (२) थंभा (३) मोहा (४) श्रद्धा ; इस प्रकार लिखना– यन्त्र के ऊपर सौधर्म देवलोकवासी, श्री सिद्धचक्रजी का अधिष्ठायक, बहुत से देव और देवियों के अधिपति श्री विमल स्वामी का ध्यान गुरु से जानकर करना, तदनन्तर रोहिणी आदि सोलह विद्या देवियों, गौमुख यक्षादि चौबीस शासनदेव और चक्रेश्वरीजी आदि चौबीस शासन देवियाँ; दायीं बायीं तरफ स्थापना, कलश के मूल में सूर्यादि नौ ग्रहों की स्थापना करनी चाहिए, कलश के गले में नैसर्पी आदि नव विधान का स्थापन करना – (१) नैसर्प (२) पांडुक (३) पिंगल (४) सर्वरत्न (५) महापद्म (६) काल (७) महाकाल (८) माणव (९) शंख क्रमशः लिखना।

उसके पश्चात् (१) कुमुद (२) अंजन (३) वामन (४) पुष्पदन्त, ये चार दिग्पाल और (१) मानभद्र (२) पूर्णभद्र (३) कपिल (४) पिंगल, ये चार वीरों की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व आदि दिशाओं में स्थापना करना; दस दिशापालों की इस प्रकार स्थापना करनी—(१) पूर्व में—ॐ इन्द्राय नमः (२) अग्नि कोण में—ॐ आग्नेय नमः (३) दक्षिण में—ॐ यमाय नमः (४) नैऋत कोण में—ॐ नैऋतये नमः (५) पश्चिम में—ॐवरुणाय नमः (६) वायव्य कोण में—ॐ वायवे नमः (७) उत्तर में—ॐ कुबेराय नमः (८) ईशान में—ॐ ईशानाय नमः (९) उर्ध्व दिशा में—ॐ ब्रह्मणे नमः (१०) अधोदिशा में—ॐ नागाय नमः इन्हें क्रमशः लिखना। यन्त्र के दायीं तरफ—ॐ क्षेत्रपालाय नमः —लिखना।

इस प्रकार से यह यन्त्र का विधान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. युद्ध करना है तो अपने आप से करो

२. शुद्ध आचरण ही धर्म है।

३. सत्य के प्रभाव से मनुष्य महासमुद्र में भी सुरक्षित रहता है।

४. अहिंसा अमृत है, हिंसा विष है

५. स्वर्ग और नरक मनुष्य के हाथ में है।

६. मोंह रहित मनुष्य दुःख मुक्त है

७. पहिले बनो फिर बनाओ

८. ज्ञानी पुरुष ही संयम साध सकता है।

९. मनुष्य जीवन में ही सत्य कार्य करने का अवसर उपलब्ध होता है।

१०. क्षमा से क्रोध को जीतो।

११. सच्ची वीरता स्वयं को जीतने में है।

१२. सत्य की खोज ही सत्य के जन्म की प्रक्रिया है।

१३. धर्म की धूरी को खींचने के लिए धन की आवश्यकता नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org